ज्ञानामृत

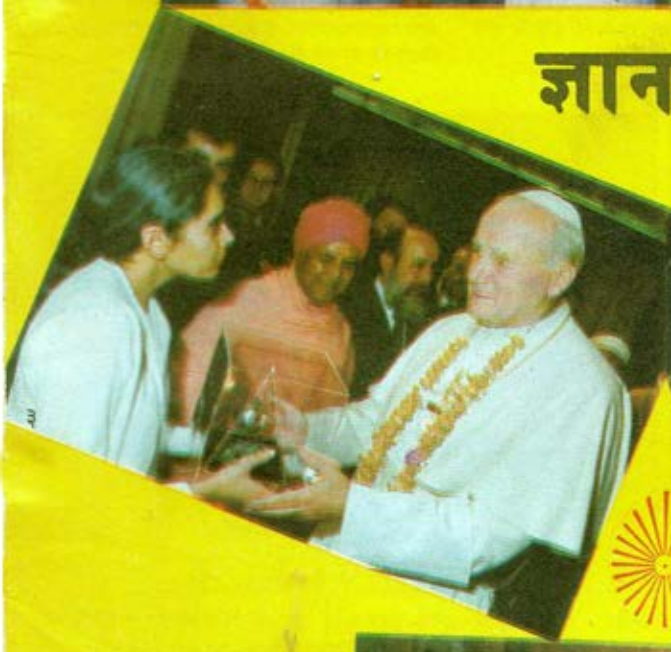

फरवरी, 1988
वर्ष 23 ❋ अंक 8

मूल्य 1.75

१ कलकता—पुस्तक मेले में आयोजित ब्रह्माकुमारी ई० वि० वि० के आध्यात्मिक पुस्तकों के स्टाल का उद्घाटन करने के पश्चात भ्राता सरलदेव जी, पुस्तकालय मंत्री, बी० के० कानन तथा अन्य ईश्वरीय स्मृति में खडे हैं।

२ ज्ञानामृत के मुख्य संपादक भ्राता जगदीश चन्द्र जी इसराईल की यात्रा के समय टेल अबीब वि० वि० में प्रो० बेन अनी तथा डा० बिडरमेन के साथ।

३ रोम—ब्रह्माकुमारी जयन्ति, संचालिका, राजयोग केन्द्र लंदन, महामहिम पोप जी को शांति का प्रतीक ईश्वरीय उपहार भेंट कर रही हैं।

४ मद्रास—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' सम्मेलन के उद्घाटन समारोह का दृश्य। चित्र में दादी प्रकाशमणी जी, भ्राता सी० सुब्रामन्यम, न्यायमूर्ति भ्राता ए० एन० सेन, जस्टिस एस० मोहन तथा डा० चिट्टी बाबू दिखाई दे रहे हैं।

५ जयपुर—'विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक' के उद्घाटन समारोह मे मंच पर दाये से ब्र० कु० रत्नमोहिनी जी, दादी जानकी जी, भ्राता गिरिराज तिवारी जी, बाबेल जी, ब्र० कु० जगदीश चन्द्र जी तथा ब्र० कु० सुषमा बहन विराजमान हैं।

आबू पर्वत—भ्राता देवेन्द्र कुमार संसल, सचिव, दूर संचार विभाग, नई दिल्ली के पाण्डव भवन में पधारने पर दादी प्रकाशमणी जी, मुख्य प्रशासिका, ई.वि.वि. उन्हें ईश्वरीय सौगात भेंट कर रही हैं।

आबू पर्वत—भ्राता सरदार सुरजीत सिंह मिन्हास, स्पीकर, पंजाब विधानसभा ईश्वरीय विश्वविद्यालय के मुख्यालय पाण्डव भवन में पधारे। दादी प्रकाशमणी जी, मुख्य प्रशासिका, ई.वि.वि. उन्हें सस्नेह ईश्वरीय सौगात भेंट कर रही हैं।

आबू पर्वत—भ्राता विनय कृष्ण खन्ना, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के ई.वि.वि. के मुख्यालय पाण्डव भवन पधारने पर राजयोगिनी दादी प्रकाशमणी जी उन्हें सस्नेह ईश्वरीय सौगात भेंट कर रही हैं।

सिन्दरी में आयोजित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' सम्मेलन में भाग लेते हुए मंच पर बाएं से भ्राता जे.पी. नंदा, उपमहाप्रबन्धक, एफ.सी.आई., सिन्दरी, ब्रह्माकुमारी निर्मल शान्ता जी, बहन राजबाला वर्मा, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, धनबाद तथा बी.के. कानन विराजमान हैं।

इंदौर—'दिव्य जीवन कन्या छात्रावास' के ५वें वार्षिकोत्सव समारोह का शुभारंभ भ्राता राजेन्द्र अवस्थी जी, प्रधान सम्पादक, साप्ताहिक हिंदुस्तान तथा कादम्बिनी दीप प्रज्ज्वलित करके कर रहे हैं। ब्र.कु. आरती, करुणा बहन तथा ब्र.कु. ओमप्रकाश परमात्म-याद में खड़े दिखाई दे रहे हैं।

भुवनेश्वर: महामहिम भ्राता बी.एन. पांडे, राज्यपाल, उड़ीसा को 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम से अवगत कराने के बाद ब्र.कु. सन्देशी जी तथा अन्य ब्र.कु. बहन-भाई उनके साथ दिखाई दे रहे हैं।

पुरी में ब्रह्माकुमारी प्रतिमा जी, बहन राजेन्द्रा कुमारी बाजपेयी, कल्याण मंत्री, भारत सरकार को ईश्वरीय सौगात के रूप में श्रीकृष्ण का चित्र भेंट कर रही हैं।

बुटबल (नेपाल)—नेपाल के श्री ५ महाराजाधिराज वीरेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव सरकार के शुभ जन्मोत्सव के अवसर पर स्थानीय सेवाकेन्द्र द्वारा निकाली गई झांकी प्रथम रही। चित्र में ब्रह्माकुमारी कमला बहन नेपाल के जल स्रोत मंत्री जी से प्रथम परस्कार ले रही हैं।

वर्धा में रा.भा.प्र. समिति स्वर्ण महोत्सव के अन्तर्गत सर्वधर्म समभाव प्रदर्शनी में आयोजित शान्ति प्रदर्शनी को देखने के पश्चात् मध्यप्रदेश के शिक्षण राज्यमंत्री, बी.के. शोभा बहन तथा अन्य के साथ दिखाई दे रहे हैं।

उदयपुर—बार एसोसिएशन में आयोजित कार्यक्रम में उपस्थित वकीलों को ब्र.कु. पूनम बहन 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम से अवगत करा रही हैं।

देहली—राजोरी गार्डन सेवाकेंद्र की ओर से निकाली गई नौ देवियों की चैतन्य झांकी का एक मनोहर दृश्य।

हैदराबाद–'विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक' के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि भ्राता एन. राजी रेडी, बिजली मंत्री, आंध्र प्रदेश अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं।

पुरी–बहन सुशीला रोहतगी, ऊर्जा मंत्री, भारत सरकार को 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम की जानकारी देने के पश्चात् बी.के. निरूपमा बहन उन्हें ईश्वरीय सौगात एवं प्रसाद भेंट कर रही हैं।

पुरी में आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन उड़ीसा के राज्यपाल की धर्मपत्नी बहन शान्ता पांडेय, बहन रघुरामया, वरिष्ठ संरक्षक, ए.आई.डब्ल्यू.सी. तथा बी.के. निरूपमा बहन दीप प्रज्ज्वलित करके कर रही हैं।

काहिरा (मिसर) ब्र० कु० जगदीश चन्द्र जी काहिरा में काहिरा विश्वविद्यालय की लॉ फेकल्टी में प्रो० फोड रेड, डॉ० खलील अध्यक्ष थ्योसॉफीकल सोसाईटी तथा लेला इलसोसी तथा अन्य से मिलते हुए

अमृत-सूची

१.	शिवबाबा–	१
२.	शिव-दुःख हर्ता सुख कर्ता (सम्पादकीय)–	२
३.	परिस्थितियों के जिम्मेवार हम स्वयं हैं–	५
४.	जीवन में आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त हो?–	७
५.	विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक–	१०
६.	ज्ञान-योग का क्रिकेट–	१२
७.	विज्ञान और आध्यात्म–	१३
८.	श्रीकृष्ण के नाम भक्त का पत्र और उसका उत्तर–	१४
९.	अर्न्तमुखी सदा सुखी	१६
१०.	सचित्र सेवा समाचार –	१८
११.	हीन भावना–	१९
१२.	धार्मिक पुस्तकें और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान–	२१
१३.	न दुःख दो, न दुःख लो–	२३
१४.	निर्विकल्प अवस्था–	२४
१५.	राम का धनुष-बाण–	२५
१६.	मानसिक आवेग आप के साथ क्या कर सकते हैं–	२६
१७.	सचित्र सेवा समाचार–	२८
१८.	निर्बलता हटाओ–	२९
१९.	आध्यात्मिक सेवासमाचार (सचित्र)–	३१

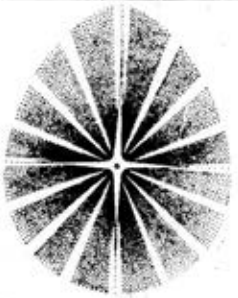

परमपिता परमात्मा शिव

शिवबाबा

सद्गति दाता एक 'शिव', सबसे ऊँच महान्।
मुक्ति, जीवनमुक्ति दे, करते जग कल्याण ।।१।।
परम पिता का नाम शिव, नहीं कभी बदलाय।
जन्म-मरण में आय यदि, कैसे सबै छुड़ाय ।।२।।
आदि मध्य और अन्त का, जो देता है ज्ञान।
बीज रूप इस झाडका, सत् चेतन भगवान् ।।३।।
महिमा केवल शिव की, लिब्रेटर कहलाय।
पतितों को पावन बना, परम-धाम ले जाय ।।४।।
निराकार मैं शिव सदा, कैसे ज्ञान सुनाऊं।
प्रकृति के आधार बिनु, मुख कहां ते पाऊं ।।५।।
निराकार रचता मैं, रचना सब साकार।
कर्म करूं कैसे यहां, बिना प्रकृति आधार ।।६।।
अपकारी पर उपकार कर, शिवबाबा का काम।
विकर्म नसावहिं याद ते, वर्सा दे सुखधाम ।।७।।
गारंटी दे शिव पिता, सतत याद हो बाप।
निश्चय आयु बढ़ेगी, मिटहिं शोक संताप ।।८।।
पारलौकिक पावन करे, लौकिक पतित बनाय।
ये वर्सा दे स्वर्ग का, वह निपट नरक गिराय ।।९।।
हिम्मत और हुल्लास दे, करा रहे सब काम।
स्वयं गुप्त रह वत्स का, बाला करते नाम ।।१०।।

ब्र. कु. राजकुमार, दिल्ली

शिवरात्री पर सदा-शुभ बधाई

यदि भारतवासी अथवा अन्य देशों के लोग पतित-पावन निराकार परमपिता परमात्मा शिव की वास्तविक जीवन-कहानी से परिचित होते तो वे उनके दिव्य जन्म के दिन (शिवरात्री) को लगातार कई दिनों तक बहुत धूमधाम से मनाते क्योंकि यह तो निराकार परमप्रिय परमपिता परमात्मा के कल्याणकारी दिव्य जन्म का दिन है जिन्होंने कि ५००० वर्ष (कल्प) पहले भी अत्यन्त पतित, दुखी, अशान्त, कंगाल, मोहताज, भ्रष्टाचारी, आसुरी और कौड़ी-तुल्य कलियुगी भारत को पूर्ण पावन, सुखी, शान्त, डबल ताजधारी, श्रेष्ठाचारी, दैवी और हीरे-तुल्य सतयुगी भारत बनाया था। कितने सौभाग्य की बात है कि अब वह परमप्रिय परमपिता निराकार परमात्मा शिव पुनः प्रजापिता ब्रह्मा के तन द्वारा ५१ वर्षों से सच्चा गीता-ज्ञान और राजयोग फिर से सिखा कर सुखमय संसार की स्थापना कर रहे हैं।

परमपिता परमात्मा शिव के इस हीरे-तुल्य दिव्य जन्म पर सभी को सदा शुभ बधाई है क्योंकि अब ही उन्हें यथार्थ रीति जानकर उन द्वारा २१ जन्मों के लिए स्वर्ग का सदा सुखी, सदा शान्त, सदा स्वस्थ दैवी स्वराज्य-पद प्राप्त किया जा सकता है।

'शिव' – दुःख हर्त्ता सुख कर्त्ता

संसार के सभी लोग अपने दुःख निवारण के लिए ही परमात्मा को याद करते हैं। वे परमात्मा को 'दुःख हर्त्ता और सुख कर्त्ता' मानते हैं। परमात्मा के ये दोनों गुण अथवा दुःख हरने और सुख करने रूप उसके दोनों कर्त्तव्य एक 'शिव' शब्द में ही समाये हुए हैं। सच तो यह है कि दोनों कर्त्तव्यों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण कर्त्तव्य भी समाया हुआ है। जिस भाव से परमात्मा को पतित-पावन कहा जाता है, वह भी शिव शब्द में अन्तर्निहित है क्योंकि शिव शब्द कल्याण का वाचक है और आत्मा का कल्याण तभी होता है जब वह पतित से पावन बनती है। उसे दुःख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति भी तभी होती है जब वह पावन बनती है। अतः शिव शब्द सारे आगम-निगम और दर्शन-दिग्दर्शन के गूढ़ अर्थ को अपने में समेटे हुए है। इतना ही नहीं बल्कि इससे परमात्मा के स्वरूप का भी परिचय मिलता है क्योंकि प्राचीन काल से ही शिव शब्द '०' अर्थात् बिन्दु का वाचक रहा है। वाणिज्य एवं व्यापार में '०' को शून्य कहने की बजाए कई धर्म-परायण लोग शिव शब्द का उच्चारण किया करते हैं। उसी ज्योति बिन्दु शिव के कई नामों में से दो नाम 'दुःख भंजन' और 'हर-हर' अथवा हरि भी हैं जिनका भी अर्थ है—दुःख हरने वाला।

इन नामों से यह भी स्पष्ट होता है कि परमात्मा अपना कर्त्तव्य तभी करते हैं जब संसार-भर के लोग पतित हो जाते हैं अथवा दुःख से पीड़ित होते हैं। वर्ना सुख के समय में दुःख भंजन, हर-हर अथवा शिव गुण एवं कर्त्तव्य वाचक नाम लेने का तो कोई प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। परन्तु जहाँ आज प्रायः लोगों को परमात्मा के दिव्य स्वरूप का परिचय नहीं, वहाँ वे यह भी नहीं जानते कि परमात्मा के कर्त्तव्य किन्हीं एक-दो व्यक्तियों को पावन बनाने अथवा सुख-शान्ति देने से सम्बन्धित नहीं होते बल्कि **वे सारे संसार को** ही दुःखमय से सुखमय बनाने के निमित्त होते हैं। जैसे माता-पिता अपने सारे कुटुम्ब के भरण-पोषण का कर्त्तव्य करते हैं वैसे ही विश्व के मात-पिता परमात्मा भी एक बार कलियुग के अन्त में, विश्व के घोर अधोपतन के काल में, सारे संसार को परिवर्तित कर सतयुगी एवं सुखमय बनाते हैं।

सुखमय बनाने का अर्थ

सभी प्रभु-प्रेमी अथवा ईश्वर-विश्वासी लोग यह तो कहते हैं कि परमात्मा सुखदाता है परन्तु वे इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ नहीं जानते। इस विषय में एक बात तो यह जानने की ज़रूरत है कि अगर एक-दो व्यक्तियों को सुख देने का कार्य किया भी जाए तो भी वे इस संसार में तब तक पूर्ण सुखी नहीं हो सकते जब तक सारा संसार सुखी न हो। किन्हीं दो व्यक्तियों के सुखी होने के लिए भी यह ज़रूरी है कि प्रकृति सतोगुण प्रधान हो, प्राकृतिक आपदायें, प्रकोप अथवा असन्तुलन नाम मात्र को भी न हों पर्यावरण (वातावरण) शुद्ध, कीटाणुओं से रहित, ज़हरीली गैसों के बिना हो, मित्र-सम्बन्धी एवं अड़ोसी-पड़ोसी स्नेही, मधुर भाषी, शिष्ट, ईमानदार और चरित्रवान हों। नगरवासी और राजा-प्रजा सभी शुभ-चिन्तक, हंसमुख, सन्तोषी और सम्मान युक्त व्यवहार करने वाले हों, दरिद्रता और रोग तो दर्शनमात्र भी न हों, दुख और पीड़ा के समाचार भी सुनने को न मिलें, कलह-क्लेश और कोलाहल, कोहराम का किसी ने वहाँ नाम भी न सुना हो। पशु-पक्षी अभय, मित्रवत और सुख-चैन से रहने वाले हों, लता-गुल, फल-फूल, अन्न-धन सब प्रचुर मात्रा में हों और सुखदायक हों। न अनेक धर्म हों न उनमें होने वाले फ़साद और न अपनी-अपनी भाषा व रंगभेद के कारण अपनी-अपनी ढपली बजाकर साम्प्रदायिक दंगे कराने वाले, जाति-पाति के भेद को लेकर घृणा फैलाने वाले, काले-गोरे की बात को उठाकर अलगाव की बेसुरी तान छोड़ने वाले लोग हों। अधिक सूची बनाने से क्या लाभ, इतना भी पूरा हो, तब तो किसी मनुष्य को पूर्ण सुख की कल्पना भी हो सकती है। और, हमें मालूम होना चाहिए कि परमात्मा पूर्ण है, उसमें ज्ञान भी पूर्ण है, वह शान्ति, आनन्द, प्रेम और शक्ति की दृष्टि से भी परिपूर्ण है। अतः जब वह देता है तो देता भी 'पूर्ण' है। वह अविनाशी है और विश्व का मालिक और पालक है, अतः जब वह 'दाता' देता है तो देता भी चिरस्थायी है और सारे विश्व को देता है। इसलिए उसका एक नाम 'विश्वम्भर' (जिसे अपभ्रंश में लोग विशम्भर कहते हैं) भी है।

किसी देश का राष्ट्रपति जो आज्ञा (Ordinance) देता है, वह समूचे राष्ट्र के लिए होती है, इसी प्रकार परमपिता

परमात्मा सारे विश्व के लिए देता है और प्रजापति (प्रजापिता) के रूप में विश्व-भर की प्रजाओं के लिए देता है। परमात्मा के सभी गुणों और कर्त्तव्यों के वाचक जो नाम हैं, उनका विश्व-व्यापक अर्थ है अर्थात् उनका प्रभाव सारे विश्व पर पड़ता है।परन्तु लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि परमात्मा स्वयं ही विश्व में व्यापक है और दूसरी ओर वे यह भूल गए कि उसके कर्त्तव्यों का फल सारे व्यापक विश्व को मिलता है।

यह बात स्पष्ट हो जाने के बाद कि परमात्मा के लिए प्रयोग होने वाले 'दुःख हर्त्ता','सुख कर्त्ता','पतित-पावन', 'दाता' आदि शब्दों का अर्थ सारे विश्व और सभी प्राणियों एवं जीव-जंगम पर प्रभावी होता है, अब यह जानने की आवश्यकता है कि सारे संसार में सुख शान्ति की व्यवस्था कैसे हो? अथवा, उस सुखमयी सृष्टि में सर्वांगीण सुख-शान्ति का ढाँचा कैसा होगा? मनुष्य-समाज के लिए तो राज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था आदि अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है। यदि ये सभी सम्पूर्ण सुखमय होंगे तो कैसे? सुख का आधार क्या होगा? किस बात से व्यवस्था जो आज दुःखमय है, सुखमय हो जाएगी ?

यों यह विषय एक बहुत विशाल विषय है परन्तु हम उदाहरण अथवा नमूने के तौर से उपरोक्त प्रकार की व्यवस्थाओं के बारे में एक-एक बात कहेंगे। देखने में बात बहुत छोटी होगी लेकिन उसका परिणाम बहुत बड़ा होगा। जैसे हम किसी घड़ी को जब चाबी देते हैं तो उसका एक पहिया घूमने से वह दूसरे को, दूसरा तीसरे को और इस प्रकार एक-साथ सभी एक-दूसरे के सामञ्जस्य में चलने लगते हैं परन्तु हमें केवल बाहर से 2-3 सुईया ही ठीक प्रकार से चलती हुई और समय को इंगित करती हुई दिखाई देती हैं, वैसे ही कोई एक-एक गुण समाज की व्यवस्था को व्यवस्थित गति देता हुआ-सा मालूम होता है और सभी गतियाँ परस्पर ऐसे सामञ्जस्य में हो जाती हैं कि समाज की कुल व्यवस्था ठीक चलती हुई मालूम होती है और इसके फलस्वरूप हम यह कहते हैं कि यह सतयुगी समाज है जिसका भाव यह होता है कि इस समाज में हर कोई सुखपूर्वक है और किसी भी प्रकार का यहाँ दुःख नहीं है।

राज्य व्यवस्था का आधार

उस सुखमय समाज के सुखमय होने का एक मूल कारण यह होगा कि राजा **पितृ तुल्य** होगा। जैसे पिता अपने पुत्रों के लिए सुख-सुविधा देने की व्यवस्था सोचता है, वैसे ही वहाँ के राजा रानी का कोई भी कार्य-कलाप जनता में भय, आक्रोश, घृणा, दुःख, उपद्रव या अशान्ति को फैलाने वाला नहीं होगा। यहाँ तक कि 'कर' (Tax) नाम की भी कोई चीज नहीं होगी। न कोई दण्ड संहिता (Penal Code) या कारावास (Jails) होंगे। प्रजा स्वेच्छा ही से राजकोष में कुछ दिया करेगी अथवा राजा-रानी को कुछ भेंट किया करेगी और वे प्रजा को कुछ दिया करेंगे। 'राजा' शब्द वहाँ भय या घृणा को पैदा करने वाला नहीं होगा बल्कि स्वाभाविक स्नेह को जागृत करने वाला होगा। राजा 'देने वाला' और 'उदार' होने के कारण आज भी देने की वृत्ति को 'राज वृत्ति' कहते हैं।

समाज व्यवस्था

समाज एक **परिवार की तरह** से होगा, इसलिए सबमें परस्पर स्नेह होगा और वह स्नेह ही अपराध, अलगाव अथवा अनबन का बीज ही पैदा नहीं होने देगा। सभी ऐसा महसूस करेंगे कि वे एक-दूसरे के समीप हैं, इसलिए परस्पर लेन-देन में खींचातान नहीं होगी। जैसे वहाँ राजा को पिता-तुल्य मानेंगे, वैसे ही वे सभी एक-दूसरे से उस राजा ही के परिवार अथवा स्नेही प्रजा के रूप में स्नेह पूर्ण व्यवहार करेंगे।

अर्थ एवं वाणिज्य व्यवस्था

उस स्नेह के कारण हर कोई हर दूसरेको **कुछ देने ही की बात** सोचेगा। लेने, मांगने, शोषण करने, स्वार्थ पूर्ण व्यवहार करने, अपना ही लाभ सोचने की भावना नहीं होगी। लेन-देन में सौदा-बाजी, चुक-चुकाव, लाभ-हानि इत्यादि का विचार नहीं होगा बल्कि परिवार जनों की तरह से जिसके पास जो वस्तु (अधिक) है, वह दूसरों को देगा। हर कोई यह सोचेगा कि यह व्यक्ति इस वस्तु का व्यापार करता है तो यह वस्तु देते समय इसको लाभ हो, वह यह नहीं सोचेगा कि मैं घाटे में न रहूँ। दूसरे को लाभ होने से उसे खुशी होगी और लाभ उठाने वाला व्यक्ति भी समय आने पर उस व्यक्ति को लाभ पहुँचाने का कृत्य करेगा। कोई ऐसा नहीं महसूस करेगा कि व्यापारी ने दाम ज्यादा लगा दिया, तौल कम दिया, चीज घटिया दी या व्यवहार ठीक नहीं किया बल्कि सभी यह महसूस करेंगे कि सभी को लाभ हुआ। दूसरे को खुश करने में स्वयं को खुशी का अनुभव होगा। आज भी व्यापारी लोग दीवाली के दिन, नया व्यापारिक वर्ष प्रारम्भ होने पर अपनी गद्दी के निकट अथवा सामने स्वास्तिका खीचकर उसमें केसर में रंगे हुए चावल लगा कर लिख देते हैं-**'शुभम् लाभम्'** परन्तु वे स्वास्तिका को **अपने लिए** स्वस्ति और शुभम् लाभम् को **अपने लिए** ही शभ और लाभदायक होने की चेष्टा करते हैं, ग्राहक के लिए नहीं। वास्तव में यह उस श्री लक्ष्मी श्री नारायण के राज्य काल में

और लाभ की चेष्टा के प्रतीक हैं जिसे या तो लोग आज जानते नहीं, या आज उसे स्वार्थपूर्ण संकुचित अर्थ में प्रयोग करते हैं।

मूल गुण

जब वहाँ पर हरेक का हरेक से स्नेह होगा और सभी को सब चीज़ उपलब्ध होगी तो किसी व्यक्ति या वस्तु विशेष के प्रति मोह-ममता, आसक्ति, स्वार्थ-पूर्ण प्यार या संकुचित स्नेह होने का प्रश्न ही नहीं उठता और स्नेह तथा वस्तुओं का अभाव न होने के कारण अपराध का भी प्रश्न नहीं उठता। अपराध न होने से न्याय की व्यवस्था की ज़रूरत नहीं रहती। अभाव नहीं होगा तो चोरी डाके क्यों होंगे? स्नेह होगा तो लड़ाई-झगड़े अथवा मारकाट क्यों होंगी? और, यह सब नहीं होंगे तो दण्ड संहिता, न्यायाधीश, पुलिस, वकील और कारावास की क्या आवश्यकता है? जब सभी परिवार की तरह रहते होंगे तो पुलिस की क्यों जरूरत होगी?

न्याय व्यवस्था

उपरोक्त से स्पष्ट है कि 'देने की भावना', 'स्नेह', 'एक ही कुटुम्ब के सदस्यों की तरह व्यवहार'—इस प्रकार के सद्गुण अथवा सद्भाव सारी व्यवस्था की नींव का काम करेंगे अथवा सभी व्यवस्थाओं के प्रेरक होंगे।

परन्तु स्वयं इन सद्भावनाओं एवं सद्गुणों का विकास अथवा उत्कर्ष तब होता है जब मनुष्य में लोभ और मोह न हो क्योंकि ये दोनों प्रेम को संकुचित करने वाले और निकृष्ट बनाने वाले होते हैं। प्रेम का शुद्ध और सात्विक रूप तो व्यापक होता है, वह प्रेम दैहिक सम्बन्ध, जाति, देश, सम्प्रदाय, लिंग इत्यादि की दीवारों को खड़ा नहीं होने देता। लिंग और दैहिक सम्बन्ध की दीवार न होने का एक अर्थ यह है कि वहाँ प्रेम काम वासना का रूप भी नहीं लेता। जब प्रेम, निर्मल, निस्वार्थ और निर्बन्धन हो तब वहाँ काम, लोभ व मोह के साथ-साथ क्रोध और अहंकार भी नहीं होता बल्कि सन्तुष्टता और समर्पण भाव होता है। अतः प्रेम के शुद्धिकरण से ही नये सुखमय समाज की स्थापना हो सकती है क्योंकि सुख और शान्ति का जनक प्रेम ही है; सभी लड़ाइयों और झगड़ों का शमन या अन्त करने वाला भी प्रेम ही है।

प्रेम की शुद्धि तभी होती है जब कोई दूसरों को आत्मा की दृष्टि से देखता है। आत्मा की दृष्टि से दूसरों को तभी देखा जा सकता है जब मनुष्य आत्मा के स्वरूप में स्थित हो। आत्मा में स्थिति तभी हो सकती है जब आत्मा का ज्ञान हो। प्रेम कोई प्रकृति-कृत वस्तु नहीं, कोई रासायनिक पदार्थ अथवा भौतिक सत्ता नहीं बल्कि आत्मा ही की भावना अथवा दृष्टिकोण की नहीं, इसकी उत्पति आत्मा में तब होती है जब एक आत्मा दूसरे के प्रति सम्बन्ध और स्वाभाविक निकटता अथवा अपनत्व का अनुभव करती है और आत्मा के स्वरूप में स्थित होने से ही ये निर्मल भाव उत्पन्न होते हैं। पहले आत्मा को स्वयं इस प्रेम की अनुभूति की जरूरत है, तभी वह दूसरों से भी प्रेम के सम्बन्ध से व्यवहार करती है। ऐसे निर्मल, स्वाभाविक और निःस्वार्थ प्रेम के देने वाला परमात्मा ही है। जब आत्मा परमात्मा से युक्त होती है तब उसे ऐसे प्रेम की अनुभूति होती है और तब उसके अपने व्यवहार में भी प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। आत्मा के स्वरूप में स्थित होने और परमात्मा से युक्त होने तथा उसके अपार प्रेम की अनुभूति करने ही का नाम योग है। अतः यह ज्ञान और योग ही प्रेम का शुद्धिकरण कर और उसे व्यापक बनाकर दुःख हरने व सुखमय समाज की स्थापना करने के मूल उपाय हैं, एकमात्र विधि-विधान अथवा सुख-शान्ति के उत्पादक हैं। इनके बिना सुख-शान्ति की इच्छा करना तथा अनेक प्रकार के प्रयत्न करना एक प्रकार से पानी में मथनी मार कर मक्खन प्राप्त करने की चेष्टा करना है अथवा रेत से घी निकालने की चेष्टा करना है, परन्तु खेद है कि लोग परमात्मा को **'दुःखहर्त्ता'** व **'सुख-शान्ति का दाता'** भी कहते हैं, **'पतित-पावन'** भी कहते हैं परन्तु वे यह नहीं जानते कि परमात्मा ज्ञान योग सिखाकर प्रेम का शुद्धिकरण करते हुए सुख और शान्ति देते हैं। लोग ज्ञान और योग को नहीं लेते, न प्रेम को पवित्र करते हैं, न आत्मा को जानकर उसमें स्थित होते हैं, न परमात्मा से युक्त होकर प्रेमानुभूति और प्रेम-अभिव्यक्ति करते हैं, केवल उसकी शाब्दिक महिमा करते हैं कि वह पतित-पावन, दुःख हर्ता, सुख कर्त्ता एवं प्यार का सागर है! काश, लोग परमात्मा की महिमा को अर्थ सहित समझते और पुरूषार्थ कर प्राप्ति के अधिकारी बनते!

अब नहीं तो कभी नहीं

हम अपनी इन आँखो से देख रहे हैं, हम स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि अब सुख-शान्तिमय संसार की फिर से स्थापना हो रही है, परमात्मा ज्ञान-योग की शिक्षा दे रहे हैं, अनेक लोग उसके द्वारा प्रेम का शुद्धिकरण कर रहे हैं और पवित्र एवं योग-युक्त बनते हुए एक नये समाज की स्थापना के निमित्त बन रहे हैं। जिस राज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था इत्यादि की चर्चा हम कर रहे हैं, उसका बीजारोपण होते हुए अभी देखा जा सकता है। अतः अब ही समय है कि कोई उस प्रेम एवं सुखमय समाज का सदस्य बने और उसके लिए ज्ञानवान, पवित्र एवं योग युक्त बने। अब नहीं तो कभी नहीं।

—जगदीश

सम्वाद

"परिस्थितियों के जिम्मेदार हम स्वयं हैं"

बी.के. सूरज कुमार, आबू

(दो ब्रह्माकुमारी बहनों की गुह्य वार्ता...)

भारती—किरण दीदी, आज पुरुषार्थ की कुछ गुह्य बातें सुनाओ...

किरण—अव्यक्त-महावाक्य सुनकर लगता है कि बाबा काफ़ी तीव्र-गति से हमें आगे बढ़ाना चाहते हैं...मुरलियों में उनका प्यार व रहम झलकता है, हमें भी उन्हीं उमंगों के साथ आगे बढ़ना चाहिए। भारती बहन, इस पुरुषार्थी जीवन में वही आगे बढ़ता है जिसे चारों ही विषयों में पूरा शौक हो। केवल एक विषय में नहीं। योग में भी पूरा रस आता हो ओर पढ़ाई का भी पूरा शौक हो। पवित्रता का भी पूरा नशा हो, और सेवा की भी उमंगे हों। सेवा योग के शौक को कम न करे। यदि पवित्रता में ढीले हुए तो सारा उमंग ही ढीला हो जाएगा। साथ-साथ स्वचिन्तन भी कम न हो।

भारती—ज्ञान-चिन्तन तो मैं करती हूं। जब भी कोई परिस्थिति आती है तो मैं उसके कारणों पर विचार करती हूं और अपनी कमी खोजने का भी प्रयास करती हूं...

किरण—इसके साथ-साथ आप एक अव्यक्त मुरली रोज़ पढ़कर उसका सार लिखो, फिर सारा दिन उसके नशे में व चिन्तन में रहो। इससे ज्ञान का बल बढ़ेगा। जैसे योग-बल है, वैसे ही ज्ञान भी एक बल है, इसको भी बढ़ाना चाहिए। यह बल ही योग में स्थिरता लाता है, यह बल ही जीवन की अनेक निर्बलताओं को दूर करता है।

भारती—ज्ञान का नया चिन्तन हम और क्या करें—यह समझ में नहीं आता। क्योंकि ज्ञान तो हमें सम्पूर्ण मिल ही गया...

किरण—ज्ञान मिलना अलग चीज़ है और उसका बल अलग चीज है। ज्ञान-बल ने ही तो हमें हिम्मत व साहस दिया है, पवित्र बनने का बल दिया। अतः चिन्तन करके नए बिन्दू निकालने की बात तो अलग है परन्तु मुख्य बात है कि ज्ञान हमारी स्मृति में रहे। यही स्मृति हमें समर्थी प्रदान करेगी।

भारती—मैं महसूस करती हूँ कि मैं इस विषय में काफी कमज़ोर हूं। मैं केवल सोचती हूं कि अपना योग का चार्ट बढ़ाऊं।

किरण—केवल आप ही नहीं, अनेक पुरुषार्थी इसमें कमज़ोर हैं, परन्तु यह सुनकर आपको सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। योग का चार्ट भी बढ़े और ज्ञान का बल भी बढ़े।

भारती—इसके अलावा, संगठन में हम काफ़ी आगे बढ़ना चाहते हैं, परन्तु हमें वैसे अवसर नहीं मिलते। तब हम आगे कैसे बढ़ेंगे। इस कारण जीवन में सन्तुष्टि नहीं होती।

किरण—पहले हमें अपने वर्तमान में सन्तुष्ट रहना चाहिए। जो भाग्य हमें प्राप्त है, जो खज़ाने हमें प्राप्त हैं, जो अवसर हमें प्राप्त हैं, उनमें हम सन्तुष्ट रहें, यह सन्तुष्टता हमारी भावी उन्नति की भी नींव बनेगी। परन्तु कई लोग, कभी न प्राप्त होने वाली भावी आकांक्षाओं के पीछे वर्तमान का आनन्द भी नहीं ले पाते। चांस भी हम मांगें नहीं, यह मांगना भी स्वमान नहीं। ईश्वरीय महावाक्य हैं कि "जो सन्तुष्ट आत्माएं हैं, उन्हे चांस स्वतः ही मिलते हैं।" हमें स्वयं को योग्य बनाना चाहिए, हमारा सेवाओं में प्रयोग करना उसका ही काम है, जिसने हमें योग्य बनाया। हमें यह भी नहीं सोचना चाहिए कि हमें कोई आगे बढ़ाये। हमें तो सोचना चाहिए कि हमें तो स्वयं के बल पर ही आगे बढ़ना है व दूसरों को आगे बढ़ाना है...सर्वशक्तिवान स्वयं हमें आगे बढ़ा रहा है।

ऐसा कौन होगा जो आगे न बढ़ना चाहता हो, परन्तु दूसरों को धक्का देकर आगे बढ़ना तो स्वयं को धक्का देने जैसा ही है। इसलिए हमारा आगे बढ़ने का तरीका ज्ञान-युक्त हो।

भारती—ज्ञान-युक्त आगे बढ़ने का रहस्य क्या है?

किरण—हम ये अच्छी तरह जान लें कि आगे बढ़ना क्या है? इन्चार्ज बन जाना आगे बढ़ना नहीं है। यह तो दुनियावी रीति में आगे बढ़ना है। जो योग में आगे हैं, जो पवित्रता में आगे हैं, जो त्याग में आगे हैं, वही वास्तव में आगे हैं, वही सेवा में भी आगे हैं। इसके बिना जो आगे बढ़ना चाहते हैं, वह स्वप्न में भी आगे नहीं बढ़ सकते।

भारती—किरण दीदी, ये बातें तो सत्य हैं, हमें केवल इन्चार्ज बनने को ही अपना लक्ष्य नहीं मानना चाहिए। जीवन में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां आती हैं जो दिमाग को भी हिला देती हैं। ऐसे समय बड़ी निराशा होती है।

किरण—ठीक कहा आपने। परन्तु अपने विचारों को बदलने की आवश्यकता है। ज्ञान-युक्त होकर सोचने से आप पायेंगे कि जिस भी परिस्थिति से हम गुज़र रहे हैं, उसके ज़िम्मेदार हम स्वयं ही हैं, उसका बीज हमने ही बोया हुआ है।

भारती—यह भला कैसे? कई बार हमारी बिना गलती के ही लोग हमसे गुस्सा करते हैं या असन्तुष्ट रहते हैं।

किरण—गुह्यता में जाने से यह बात समझ में आ जाती है कि दूसरों का हमसे व्यवहार हमारी ही भावनाओं का प्रतिबिम्ब है। यदि कोई हमसे जरा भी असन्तुष्ट है या श्रेष्ठ भावना नहीं रखता तो अवश्य ही हमारे मन में उसके लिए अयथार्थ भावनाएं होंगी। यदि हमें कोई सहयोग नहीं देता या जीवन उपयोगी वस्तुएं नहीं देता तो अवश्य ही हमारे स्नेह या शुभ-चिन्तक भावनाओं की कमी है।

भारती—हां, यह बात है तो सत्य...

किरण—इसी तरह यदि कोई विपरीत परिस्थिति आ रही है तो देखो कि हम कहीं कोई गलती कर रहे हैं। हम या तो अमृत-वेले ठीक प्राप्ति नहीं कर रहे हैं या कोई सूक्ष्म अपवित्रता हम पर वार कर रही है या कहीं हमारी सच्चाई में कमी है। यदि हम इन कारणों को ठीक कर लें तो परिस्थितियां स्वतः ही ठीक हो जाएंगी।

भारती—परन्तु कभी-कभी हमारी गलती न होने पर भी हम पर दोष रख दिया जाता है। इससे मन बड़ा क्षुब्ध व निराश होता है, ऐसे में क्या करें?

किरण—हां, ऐसी घटनाएं किसी भी संगठन में होती ही रहती हैं। हमें अपनी सत्य बात तो अवश्य ही कह देनी चाहिए। हां, उसे बार-बार सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। बल्कि आवश्यकता इस बात की है, कि हमें अपनी सत्यता की शक्ति में विश्वास हो व हम उसमें स्थिर रहें। हम यह न भूल जाएं कि सत्य अपने में बहुत शक्तिशाली होता है। उसके समक्ष किसी का भी असत्य निर्णय हमारा कुछ भी अकल्याण नहीं कर सकेगा। क्योंकि जहां सत्य है, वहां सर्वशक्तिवान का साथ भी है। मनुष्य गलत निर्णय कर सकते हैं परन्तु सर्वशक्तिवान से तो सत्य छुपा नहीं है। परन्तु अधिकतर लोग इस निश्चय में नहीं रहते और जल्दी ही विचलित व निराश हो जाते हैं। हमें असत्य निर्णय सुनकर स्थिति को नहीं खो देना चाहिए क्योंकि यदि हम स्थिति को खोते हैं तो यही हमारी सबसे बड़ी असत्यता है। यदि हमारे बारे में गलत वाइब्रेशन्स भी फैला दिये गये तो भी सत्यता की शक्ति उन्हें सहज ही नष्ट कर देगी।

भारती—यह बात बड़े ही आत्म-विश्वास की है। परन्तु हमने ऐसी परिस्थितियों में कइयों को हिलते देखा है। वास्तव में अच्छे पुरुषार्थी को स्वयं को सदा ही सत्यता की शक्ति में अचल रहना चाहिए।

किरण—हां, हमें ध्यान रहे कि कहीं भी हमारी मन की शक्ति नष्ट न हो। किन्हीं भी व्यर्थ बातों में हमारी रुचि न हो। नहीं तो वही कहावत सत्य होगी कि "आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास"। आए थे ज्ञान-योग का आनन्द लेने और करने लगे न जाने क्या-क्या...

भारती—बहन जी, हम लोग तो सेवा में ही बहुत व्यस्त रहते हैं, बाबा तो कर्मातीत बनने की प्रेरणा दे रहा है। अब इन सेवाओं के झंझटों को कम करो। आप तो हमें चैन भी नहीं लेने देती...सेवा, सेवा और सेवा...अब इनकी जगह करो योग-योग और योग...तब कुछ होगा।

किरण—परन्तु बहन, आपसे निरन्तर वह भी तो नहीं होगा। यदि सेवा बन्द करके योग, योग ही करें तो भी कुछ ही दिनों में भारीपन हो जाएगा। सेवा तो बाबा ने हमें खिलौना दिया है। सेवा हमें बल देती है, व्यर्थ से बचाती है व गुणवान बनाती है।

परन्तु सेवा डिस्टर्ब किसे करती है? जिन्हें अनासक्त होकर कर्म करना नहीं आता। जो सेवामय (Service-conscious) हो जाते हैं। दूसरे, सेवाओं में अल्पकाल की इच्छाएं व स्वार्थ त्यागना होगा। हम तो निमित्त हैं, बाबा ने भी कहा—"काम बाबा का, नाम बच्चों का"

अच्छा यह तो बताओ, आपको फीलिंग आती है?

भारती—बहुत कम...मैंने धीरे-धीरे इस पर विजय पा ली है। बचपन में मुझे यह बीमारी काफी थी, इसीलिए तो मैं मोटी भी नहीं हो पाई।

किरण—आपने किस तरह इस पर विजय पाई?

भारती—एक तो दिनोंदिन मन हल्का होता गया और दूसरे बुद्धि विशाल होती गई।

किरण—अति सुन्दर...हल्कापन ही हमें इस बिमारी से छुड़ा सकता है। दिनोंदिन ज्ञान देकर बाबा हमें विशाल बुद्धि भी बना रहे हैं। विशाल बुद्धि वाले ही हल्के रहते हैं और वे किसी भी बात को बड़ा नहीं समझते।

भारती—अच्छा किरण दीदी...अब आप बताओ...मैं विजयी रत्न बनना चाहती हूं...मैं क्या पुरुषार्थ करूं....?

किरण—इसके लिए पहला लक्ष्य हो—8 घण्टे योग।

भारती—परन्तु मैं आठ घण्टे बैठूंगी कैसे?

किरण—बैठकर नहीं, कर्म करते हुए। परन्तु यह याद रहे कि योग, कर्म की गति को ढीला न करे। कई योगी ठन्डे हो जाते हैं, वास्तव में तो यह उनके ठन्डे योग का ही चिन्ह है। श्रेष्ठ योगी कर्म में निपुण होते हैं। वे अति चुस्त होते हैं।

भारती—यह तो ठीक है, परन्तु कुछ विधि तो बताओ...

किरण—कुछ मेहनत करनी पड़ेगी,. तैयार हो तो बताऊं...

भारती—हां बहन जी, मैं बाबा की आशाओं को पूर्ण करने के लिए सब कुछ करने को तैयार हूं...

किरण—अपनी दिन-चर्या को 3 भागों में बांट लो।

शेष पृष्ठ ३० पर

जीवन में आत्मिक शक्ति कैसे प्राप्त हो?

यह बात तो सभी जानते हैं कि मनुष्य के लिए तन और धन की शक्ति आवश्यक है। परन्तु देखा जाए तो इन दोनों शक्तियों से कहीं अधिक आवश्यकता आत्मिक शक्ति की है क्योंकि शक्तिहीन और निर्बल आत्मा काम-क्रोध, निन्दा-द्वेष इत्यादि के पंजे में फंसकर सदा दुःखी रहती है। जीवन में मनुष्य के सामने जब उग्र परिस्थितियां आ उपस्थित होती हैं तो उनमें आत्मा विचलित, उत्तेजित और मायां से प्रभावित न हो बल्कि माया की आंधियों का और तूफानों का सामना करते हुए शान्ति और आनन्द में मग्न रहे, इसके लिए आत्मिक शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु, प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक शक्ति क्या चीज़ है और जीवन में आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति किस पुरुषार्थ से हो सकती है?

आध्यात्मिक शक्ति कौन-सी शक्ति का नाम है?

आध्यात्मिक शक्तियों में सबसे पहली शक्ति **'ज्ञान की शक्ति'** है। इसे ही **'विवेक शक्ति'** (Power of Judgement of what is right and what is wrong) भी कहते हैं। ज्ञान से मनुष्य में आत्मविश्वास पैदा होता है, वह अपनी सामर्थ्य को समझ पाता है और उसमें कार्य करने की सूझ-बूझ तथा क्षमता आती है। अतः उक्ति प्रसिद्ध है कि 'ज्ञान शक्ति है' (Knowledge is might) इसके अतिरिक्त, **'योग की शक्ति'** (Yoga Power), **'पवित्रता की शक्ति'** और **'धर्म अर्थात् धारणा की शक्ति'** (Religious Might) भी आध्यात्मिक शक्ति में सम्मिलित हैं। आज मनुष्य भक्त, पुजारी, पंडित अथवा विद्वान् तो है परन्तु उसकी आत्मा निर्बल है; वह अभिमान, क्रोध, लोभ, काम, आदि-आदि किसी-न-किसी विकार से अवश्य ही प्रभावित है। **आज लोगों में विज्ञान शक्ति तो है परन्तु 'सहन शक्ति' नहीं है। इसी रीति, आज मनुष्य में ग्रहण शक्ति तो है लेकिन ज्ञान शक्ति नहीं है। आज लोग पढ़े-लिखे तो हैं परन्तु उसमें 'ज्ञान' अथवा सद्बुद्धि नहीं है वरना यदि उनमें यथार्थ ज्ञान होता तो उनका जीवन बहुत उच्च, शान्तिमय, सद्गुण-युक्त और पवित्र होता।**

आध्यात्मिक शक्ति किससे प्राप्त हो सकती है?

ऊपर हमने जिन आध्यात्मिक शक्तियों का वर्णन किया है वे सभी सर्वशक्तिमान् परमपिता परमात्मा ही से प्राप्त हो सकती हैं, अन्य किसी से नहीं। जैसे बिजली की शक्ति पावर हाऊस (Power House—बिजलीघर) से ही मिल सकती है, किसी बनिये की दुकान से नहीं, ठीक उसी प्रकार आत्मिक शक्ति भी परमात्मा से ही प्राप्त हो सकती है, किसी बनावटी जगत् गुरु से नहीं। एक परमात्मा ही को 'ज्ञान का सागर', 'सद्बुद्धि का दाता' अथवा 'सर्वज्ञ' कहा जाता है, अतः ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान के भंडार परमात्मा ही से हो सकती है। परमात्मा ही को 'योगेश्वर' भी कहा जाता है, अतः योग की शक्ति भी उन्हीं से प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार, परमात्मा को ही 'पतित पावन' अथवा 'परम पवित्र' भी कहा जाता है। इसीलिए उन्हीं से पवित्रता की शक्ति भी प्राप्त हो सकती है। धर्म की स्थापना का कार्य भी उसी परमपिता परमात्मा ही का है। अतः धारणा और धारणा की शक्ति भी उस ही से मिल सकती है। **धर्म के मार्ग पर चलने के लिए भी मनुष्य को शक्ति चाहिए क्योंकि उसमें अनेक कठिनाइयां अथवा विघ्न आते हैं। मनुष्य को वह शक्ति भी परमात्मा देते हैं। यदि मनुष्य को वह शक्ति अथवा आसरा न मिले तो मनुष्य ज्ञान, योग, पवित्रता अथवा धर्म के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकेगा और उसकी धारणा दृढ़ अथवा पक्की नहीं हो सकेगी।**

ज्ञान से शक्ति कैसे मिलती है?

अब प्रश्न उठता है कि ऊपर जो कहा गया है कि ज्ञान से मनुष्य को शक्ति मिलती है, यह कैसे माना जाए? ज्ञान मनुष्य को व्यवहारकुशल और कर्म करने में समर्थ कैसे बनाता है? ज्ञान से मनुष्य में कैसे सहनशक्ति आती है और वह कैसे आसक्ति और आकर्षण से प्रभावित नहीं होता? इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम ज्ञान के कुछ सिद्धांतों का वर्णन करके उन्हें जीवन पर लागू करके देखते हैं कि उन सिद्धांतों से किस प्रकार मनुष्य में साहस, सहनशक्ति और कार्य की क्षमता आती है।

हमें ईश्वरीय ज्ञान द्वारा यह मालूम होता है कि (1) हम सर्वशक्तिमान् परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं और कि (2) अब कलियुगी धर्मभ्रष्ट एवं आसुरी सम्प्रदायों का महाविनाश ऐटम और हाइड्रोजन बमों तथा गृह-युद्धों इत्यादि के द्वारा होने ही वाला है और (3) हमारा वर्तमान जन्म सृष्टि-चक्र में अन्तिम जन्म है और (4) हमारे सामने जो विघ्न और कष्ट आते हैं, वह हमारे अपने ही किए हुए कर्मों का फल हैं, जिन्हें हमें कुछ भोगकर और कुछ योग द्वारा अब समाप्त करना चाहिए और (5) उसके बाद तो सदा-सुख के दिन (सतयुग) आने वाले हैं, अतः अब हमें (6) पवित्र बनना चाहिए और

ईश्वर से प्रीति जोड़नी चाहिए ताकि हमारा भविष्य उज्ज्वल बन जाए वरना यह दुनिया तो दुःखदायी ही है..." तो इन तथा अन्य इस प्रकार के सिद्धांतों से सहज रीति से ही मनुष्य में सहनशक्ति आती है। उसके मन में यह विचार आता है कि "आसुरी दुनिया में अब तो मेरा अन्तिम जीवन है और विनाश में थोड़ा ही काल शेष है, बाद में तो कोई भी तंग करने वाला न मेरा कर्म रहेगा, न दुःख देने वाला व्यक्ति ही रहेगा। अतः अभी पवित्रता के लिए, प्रभु के प्यार के लिए तथा भावी उच्च सुख के लिए मुझे सहन करना ही चाहिए। हम सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सन्तान होते हुए क्या विकारों पर विजय भी नहीं प्राप्त कर सकते? क्या हम अपने निजी जीवन को भी ऊंचा उठाने में समर्थ नहीं हैं; क्या हममें इतनी भी सहनशक्ति नहीं है"—जब ऐसा ज्ञान-मन्थन हम करते हैं तो हममें साहस, कार्य की क्षमता, व्यवहार-कुशलता और सहनशक्ति आ जाती है। हम तन के कष्ट और धन की कमी के दिनों को भी खुशी-खुशी काट लेते हैं और घर-बाहर कलह-क्लेश करने वाले व्यक्तियों के साथ भी निबाह लेते हैं।

इसी तरह, अब ज्ञान से हमें यह भी निश्चय होता है कि हम सब आत्माएं हैं; शरीर तो पांच तत्त्व का पुतला है और यह कलियुगी शरीर तो विषय-विकारों से उत्पन्न हुआ-हुआ तथा तमोप्रधान तत्त्वों का बना हुआ है और एक दिन मुट्ठी-भर राख हो जाने वाला है। हमें यह भी निश्चय होता है कि हम सभी आत्माएं सूर्य तथा तारागण के भी पार के देश 'परमधाम' अथवा ब्रह्मालोक से ही इस सृष्टि-मंच पर आई हैं और वास्तव में हम सभी भाई-भाई हैं और निकट भविष्य में सब-कुछ यहीं छोड़कर, सृष्टि के महाविनाश के पश्चात्, हम वापिस लौट जाने वाले हैं। इन तथा ज्ञान के ऐसे-ऐसे अन्य सिद्धांतों से देह और पदार्थों का आकर्षण हम पर प्रभाव नहीं करता और उनमें हमारी आसक्ति नहीं होती। **इस प्रकार, ज्ञान से मनुष्यात्मा में इंद्रियों को नियंत्रण में रखने की, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार करके अकर्त्तव्य से अलग रहने और कर्त्तव्य को ठीक रीति से करने की और अपने जीवन को धर्म के मार्ग पर चलाने की सूझ और शक्ति प्राप्त होती है।**

योग से शक्ति कैसे प्राप्त होती है?

जब हम शरीर से न्यारे होकर सर्वशक्तिमान् परमात्मा से सम्बंध (Connection) जोड़ते हैं तो जैसे बिजली के कनेक्शन (Connection) से करेन्ट (Current) आती है, वैसे ही हमें भी शक्ति का अनुभव होता है अथवा करेन्ट आता है। अतः योग को 'लाईट' (Light; प्रकाश और हल्कापन) और 'माईट' (शक्ति) भी कहा जाता है। यों नालेज (Knowledge, ज्ञान) को भी 'लाईट और माईट' कहा जाता है। परन्तु ज्ञान को 'लाईट' (प्रकाश) और 'माईट' (शक्ति) इस अर्थ में कहते हैं कि जैसे प्रकाश से मार्ग स्पष्ट होता है वैसे ही ज्ञान से भी पुरुषार्थ का मार्ग स्पष्ट होता है और उससे सहन करने की भी शक्ति आती है। परन्तु योग को 'लाईट और माईट' इस अर्थ में कहा जाता है कि उससे आत्मा को परमात्मा से **कनेक्शन (Connection, सम्बंध) द्वारा प्रकाश और शक्ति प्राप्त होती है। ज्ञान से मनुष्य को 'युक्ति' (ढंग, तरीका) रूपी शक्ति मिलती है परन्तु योग से तो मनुष्य परमात्मा से 'युक्त' हो जाता है और युक्त होने के कारण उसे मुक्ति और जीवनमुक्ति की शक्ति मिलती है। ज्ञान से तो मनुष्य परिस्थिति, पुरुषों और पुरुषार्थ को ठीक रीति से हैंडल (Handle) कर लेता है, उनके साथ कर्त्तव्य ठीक रीति से कर लेता है परन्तु योग से मनुष्य स्वयं को विदेही अनुभव करके लाईट (प्रकाश स्वरूप और हल्का) अनुभव करता है, उसे कर्मों का बोझ महसूस नहीं होता और उसे अपने पिछले संस्कार अथवा संकल्प खींचते नहीं हैं बल्कि वह उनसे छुटकारा पा लेने की शक्ति अथवा स्थिति प्राप्त कर लेता है।**

पवित्रता से शक्ति कैसे आती है?

जो व्यक्ति सरलचित्त और पवित्र होता है, उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। उदाहरण के तौर पर आप देखते हैं कि श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण आदि देवी-देवता यद्यपि आज इस साकार रूप में इस भूमंडल पर नहीं हैं तथापि आज तक भी उनका प्रभाव चला आ रहा है। आजतक लोग उनकी जड़ मूर्तियों के आगे जाकर मस्तक झुकाते हैं क्योंकि वे देवता पवित्र थे। इसके विपरीत अपवित्र मनुष्य पूज्य नहीं होता है।

अपवित्र मनुष्य उलझन में रहता है। वह हमेशा इसी सोच में पड़ा रहता है कि क्या करूं, क्या न करूं और करूं तो कैसे करूं? वह अपने अपवित्र कर्मों के कारण भय और पीड़ा में ही पड़ा रहता है और उसे यही चिन्ता लगी रहती है कि कहीं पकड़ा न जाऊं। पवित्र मनुष्य सदा एकरस, अडोल, निश्चिन्त और अभय स्थिति में रहता है। अपवित्र मनुष्य की शक्ति कभी काम-भोग में और कभी क्रोध की अग्नि में नष्ट होती रहती है, परन्तु पवित्र मनुष्य की शक्ति क्षीण नहीं होती बल्कि उसकी आध्यात्मिक शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जाती है और वह दूसरों को भी सचेत और शक्तिशाली बनाने की सेवा में ही लगती है। कामवासना के भोग में और क्रोध की ज्वाला में नष्ट होने के अतिरिक्त, अपवित्र मनुष्य की शक्ति लोभ और भ्रष्टाचार के परिणामस्वरूप भय से भी क्षीण होती रहती है और कुछ तो लोभ द्वारा एकत्रित किये गए विषय-पदार्थों को भोगने में व्यर्थ हो जाती है। इसी प्रकार, मोह से भी मनुष्य की विवेक-शक्ति (Power of Judgement) नष्ट हो जाती है। इसलिए, जो व्यक्ति मोह के वश ठीक निर्णय न कर सके उसके बारे में भी लोग कहते हैं—"इसे तो मोह की पट्टी बंधी हुई है।" अहंकारी मनुष्य के बारे में भी लोग कहते हैं—"इसे तो उल्टा नशा चढ़ा हुआ है। अहंकारी का तो सर्वनाश हो जाता है।" तो स्पष्ट है कि अपवित्रता के परिणामस्वरूप मनुष्य की

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—सभी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं।

इसके विपरीत आप देखेंगे कि पवित्रता में बहुत बड़ी शक्ति समाई हुई है। उदाहरण के तौर पर क्रोध के विपरीत गुण, प्रेम और नम्रता पर ही विचार कीजिए। प्रेम और नम्रता की शक्ति से मनुष्य दुश्मन को भी वश में कर लेता है। **इसी प्रकार, काम-वासना के भोग से तो मनुष्य दुर्बल होता है परन्तु ब्रह्मचर्य रूपी पवित्रता की शक्ति से वह संसार को झुका देता है और काल को भी वश में कर लेता है। परमात्मा परम पवित्र हैं और प्रेम के सागर हैं, इसलिए सारी दुनिया उन्हें याद करती है और मनुष्य उन पर सब-कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, परन्तु क्रोधी मनुष्य से सभी दो कोस दूर भागते हैं। प्रेम में कितनी आकर्षण शक्ति है! भले ही प्रेम में कोई डोर, कोई धागे नहीं होते परन्तु फिर भी प्रेम के अदृश्य तन्तुओं से बंधे हुए मनुष्य को कोई छुड़ा नहीं सकता।** आप देखते हैं कि सरकस (Circus) में शेर को यदि उसका मास्टर हैंटर भी लगा दे तो भी शेर उसे कुछ नहीं कहता, क्योंकि मास्टर ने उसे प्रेम से पाला होता है और वह प्रेम से ही उसे हैंटर लगाता है। इसी प्रकार, जंगल में अच्छे महात्माओं के पास शेर और बकरी भी आकर इकट्ठे बैठ जाते हैं, कारण कि वे पवित्रता की शक्ति से वश में हो जाते हैं। **तो स्पष्ट है कि क्रोध की शक्ति से प्रेम की शक्ति अधिक ऊंची है, क्योंकि क्रोध की शक्ति नाश करने वाली शक्ति है जबकि प्रेम की शक्ति निर्माण करने वाली शक्ति है और यह एक नियम है कि विनाश की शक्ति से निर्माण की शक्ति अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर आप देखेंगे कि किसी मकान को गिराने के लिए कम शक्ति की आवश्यकता होती है, परन्तु उसका निर्माण करने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।**

इसी प्रकार, शान्ति की शक्ति भी क्रोध की शक्ति से अधिक होती है। आप देखेंगे कि क्रोध करना सहज है परन्तु शान्ति में रहना कठिन है। तो स्पष्ट है कि शान्ति के लिए अधिक शक्ति चाहिए। यदि दस मनुष्य क्रोध कर रहे हों और एक मनुष्य पूर्णतः शान्त हो तो वह दस को भी शान्त कर सकता है; उसकी शान्ति का आखिर उन पर भी प्रभाव पड़ता है। क्रोध आता ही कमजोर आदमी में है जैसे कि बीमार आदमी में चिड़चिड़ापन अथवा आवेश जल्दी आ जाता है। तो सिद्ध है कि पवित्रता से, सहनशीलता से, ब्रह्मचर्य से, प्रभु और शान्ति से मनुष्यात्मा की आत्मिक शक्ति बढ़ती है।

ऊपर, जैसे यह सिद्ध किया गया है कि काम और क्रोध रूपी अपवित्रता से शक्ति का नाश और ब्रह्मचर्य, शुद्ध प्रेम तथा शान्ति रूपी पवित्रता से शक्ति में वृद्धि होती है वैसे ही आप देखेंगे कि लोभ में निर्बलता समाई हुई है। और संतोष में शक्ति। लोभ करता ही वह मनुष्य है जो तृष्णा के **वश होता है**,इच्छा का **दास** होता है अथवा आसक्ति से **हराया हुआ** होता है अर्थात् **'परवश'** होता है। **तो स्पष्ट है कि लोभी निर्बल होता है। भले ही वह चीज जिसकी उसे इच्छा होती है, उसके सामने न भी पड़ी हो तो भी वह उसके पीछे विचलित और आकुल-व्याकुल हो जाता है। परन्तु जिसमें संतोष रूपी पवित्रता है, वह चीज को देखते हुए भी उससे आकर्षित नहीं होता बल्कि वह आत्मा के स्वरूप में स्थित होकर स्वयं को वस्तु से महान् मानकर सुखपूर्वक रहता है।**

अन्य विकारों की तरह मोह और अहंकार से भी मनुष्य में दुर्बलता आती है। इसलिए, जिस मनुष्य में मोह होता है वह कहता है कि—"मैंने अमुक कार्य मोह के **'वश'** होकर किया" और जब किसी में अहंकार होता है तो कहा जाता है कि यह तो अभिमान के **वश होकर चूर-चूर हो रहा है।** इनके विपरीत अनासक्ति, उपरामता, साक्षीपन और नम्रता रूपी पवित्रता में ही शक्ति है, जिनसे कि मनुष्य मोह और अहंकार से मुक्त होकर सुख की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

धर्म से जीवन में शक्ति कैसे प्राप्त होती है?

धर्म में वह शक्ति है कि जिससे मनुष्य नियम और अनुशासन में रहता है, वह विधि-विधान (Law and Order) को तोड़ना नहीं है बल्कि मर्यादा का पालन करने में समर्थ होता है और स्वयं से सदा संतुष्ट रहता है। नियम भंग न करने के कारण, उसे किसी का भय भी नहीं होता। उसके संकल्प में दृढ़ता और सन्मार्ग पर चलने की शक्ति मिलती है।

उदाहरण के तौर पर खान-पान पर ही विचार कीजिए। अधर्मी मनुष्य शराब-कबाब, बीड़ी-सिगरेट इत्यादि सब खा-पी लेता है। **परन्तु धर्म में निष्ठा रखने वाले मनुष्य में अशुद्धि के सामने डट जाने की और प्रलोभनों तथा व्यंजनों के आगे अचल तथा स्थिर रहने की क्षमता आती है। धर्म का अंकुश उसकी लाठी बन जाता है। जिसका सहारा लेकर वह अपने पथ पर अडिग रहता है। धर्म उसे कहता है कि—"ये आसुरी आहार है परन्तु तुम तो परम पवित्र परमात्मा की देव-तुल्य सन्तान हो अथवा बन सकते हो और तुम्हारा यह शरीर एक देवालय अथवा मन्दिर है जिसमें अशुद्ध वस्तु को डालना नहीं है।"**

यदि मनुष्य के मन में कामादि वासनाएं जागृत भी हों अथवा क्रोधान्वित तथा लोभान्वित करने वाली परिस्थितियां भी आयें तो धर्म मनुष्य को यह कहकर स्वयं को काबू में रखने की शक्ति देता है कि इन विकारों के वशीभूत आचरण करने से ईश्वर के दरबार में तुझे दंड मिलेगा और इन पर विजय पाने में तुम्हें सभी उत्तम प्राप्तियां होंगी। अतः धर्म से मनुष्य में वह शक्ति आती है जिससे कि वह अपने शक्तिशाली दूषित संकल्पों को भी जीत लेता है—यह क्या कम शक्ति है! देखा जाए तो यह एक बहुत महान् शक्ति है क्योंकि संकल्प की शक्ति बहुत बलवती होती है और उस पर विजय पाने वाली शक्ति तो निस्सन्देह उससे भी उच्च ही ठहरी।

शेष पृष्ठ २५ पर

विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक

बी.के. रमेश गामदेवी, बम्बई

स्व परिवर्तन द्वारा विश्व परिवर्तन होगा यह ज्ञान अब हम बच्चों को प्यारे शिवबाबा से मिला है। उसमें स्वपरिवर्तन में क्या होगा? तो जवाब है हमारे तन, मन और धन में परिवर्तन होना चाहिए; उन्हें तमोप्रधान से सतोप्रधान बनाना होगा? और इन तीनों को सतोप्रधान बनाने की विधि निराली है।

तन में परिवर्तन करने के लिए परमशिक्षक द्वारा हमें पवित्रता का ज्ञान सिखाया गया। प्रातः अमृतवेले से रात्रि तक की हमारी दिनचर्या पवित्रता के बल पर परिवर्तित हो गई। पवित्र भोजन से अपने तन-मन को हम सतोप्रधान बनाते हैं। मन को परिवर्तन करने, उसे सतोप्रधान बनाने 'मन्मनाभव' का महामंत्र हमें मिला है। राजयोग के बल के आधार पर हम संस्कार, सम्बन्ध आदि पवित्र बनाते हैं क्योंकि इन सबका सम्बन्ध है हमारे मनोव्यापार से।

धन भी आज तमोप्रधान हो गया है। धनवान सुखी के बजाय धन के आधार पर दुःखी भी इतने ही हैं। धन के मालिकपने के आधार पर तो आज विश्व में पूंजीपतिवाद, समाजवाद, साम्यवाद, आदि-आदि वाद बन गये हैं। व्यापार में भी बड़े-से-बड़ा वाद है फायदावाद। धन के लिये ही कहा गया है "सर्वेगुणाःकांचनमाश्रयन्ते" अर्थात् सर्वगुणों का सागर धन है। धन सब बातों में मापदंड बन गया है। और मापदंड के आधार पर है मानदंड। उसी कारण कईयों ने धन को माया कह करके उसी का त्याग करने के लिए कहा। ईसाई धर्म में तो बाईबिल में लिखा भी गया है कि सुई की नोक से शायद ऊंट गुजरेगा किन्तु स्वर्ग के द्वार से धनवान नहीं निकल सकेगा। आज विश्व में कहते हैं धन के कारण भौतिकवाद (Materialism) बढ़ गया है। सतयुग में श्रीलक्ष्मी और श्रीनारायण के राज्य में अखुट धन संपत्ति है किन्तु वहां भौतिकवाद नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि जैसे प्रकृति में परिवर्तन होगा वैसे ही धन में परिवर्तन होगा। जैसे अन्न शुद्धि पवित्र भोजन द्वारा होती है वैसे ही धन शुद्धि का प्रयोग हम बच्चों द्वारा शिवबाबा कराते हैं तब तो सतयुगी सतोप्रधान धन अपार सुख का स्रोत होगा।।

मन का सम्बन्ध है आत्मा से और तन तथा धन का सम्बन्ध स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों से है अर्थात् प्रकृति से भी है। इस तरह तन तथा धन के शुद्धिकरण से प्रकृति भी सतोप्रधान होगी। पांच तत्वों से बने इस शरीर का सम्बन्ध प्रकृति से है। उसी तरह धन का सम्बन्ध संपत्ति (Wealth) के साथ है। संपत्ति 14 प्रकार की है जैसे कि कीर्ति, विद्या, परिवार, घर, पशु, अन्न, तन्दरुस्ती आदि-आदि। कीर्ति तथा विद्या आदि सूक्ष्म हैं तो परिवार, मकान, पशु आदि स्थूल संपत्ति के रूप हैं और इस स्थूल का सम्बन्ध प्रकृति के तत्वों के साथ है। इस तरह तन एवं धन के परिवर्तन का प्रभाव प्रकृति पर भी होता है। सूक्ष्म शुभ विचारों का निर्माण जब मन करता है तो वायुमंडल में उसका भी शुभ प्रभाव होता है।

आज की सृष्टि में धन का अर्थ पैसे के साथ जोड़ने के कारण सारा ही अर्थशास्त्र (Economics) के अर्थघटन में परिवर्तन हो गया है। अर्थ का अनर्थ हो गया और वह अनर्थशास्त्र हो गया। शिवबाबा ने भाषा का अर्थ हमें बताया कि भाषा तो सिर्फ भाव को व्यक्त करने का साधन है। भाषा साधन है साध्य नहीं। शिवबाबा ने इस तरह एक क्षण में भाषावाद का भूत हमारे दिल-दिमाग से दूर कर दिया। उसी प्रकार पैसा भी खरीद-शक्ति का निमित्त प्रतीक है। धन के माध्यम द्वारा लेन-देन का कार्य आसान हो सकता है। इस प्रकार धन की शक्ति का वास्तविक परिचय मिलने के कारण धन के प्रति जो हमारी आसक्ति थी वह दूर कराई। और जैसे 'मन्मनाभव' के महामंत्र द्वारा हमारे मन के स्पंदन आदि को शुद्ध किया उसी तरह शिवबाबा ने धन के बारे में ट्रस्टी भाव हमारे में निर्माण कराके धन का अपव्यय दूर किया। आज का "धन आधारित अर्थशास्त्र (Money based economy) के बदले में शिवबाबा ने "संपत्ति आधारित अर्थशास्त्र (Wealth based economy) का अर्थघटन हमारे सामने रखा अर्थात् धन का अर्थशास्त्र नहीं किन्तु संपत्ति का अर्थशास्त्र सिखाकर हमें संपत्ति का सच्चा अर्थ सिखाया। अर्थ कोई छोटी बात नहीं क्योंकि गाया गया है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—तो इतना महान् और दिव्य अर्थ है अर्थ का।

साम्यवाद में धन (पैसा) का मालिक सरकार बनती है। वहां धन-संपत्ति का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) होता है। परन्तु सरकार धन का शुद्धिकरण नहीं कर पाती क्योंकि वह सरकार पतित-पावन नहीं है। वह सरकार तमोप्रधान लोगों की ही बनी हुई है। शिवबाबा स्वयं पवित्रता का सागर है, इसी कारण धन-शुद्धिकरण (Devinisation) कर सकते हैं। उस सरकार के पास धन जमा करने से भविष्य नहीं बनता और शिवबाबा ऐसे भंडारी हैं जो हमें एक का

पदमगुणा बनाकर नई सृष्टि में देते हैं। कहते हैं पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, वह पारसमणि शिवबाबा हैं और लोहा अर्थात् तमोप्रधान धन सतोप्रधान स्वर्णयुग का प्रतीक और मार्गदर्शक बनता है।

शिवबाबा कहते हैं बच्चे मेरे समान बनो। शिवबाबा सदा मालिक (पति) रहते हैं,कभी वो गुलाम नहीं बनते, उसी कारण शब्द बना 'संपत्ति' अर्थात् मालिक समान भव। **क्योंकि आज की सृष्टि में धन के कोई मालिक अर्थात् पति नहीं किन्तु सब गुलाम हैं।** शिवबाबा हमें ट्रस्टी बनाकर उसमें रहा हमारा जो लोभ रूपी विकार है उस विकार पर त्याग रूपी साधना द्वारा हमें जीत पहनाते हैं। योग में याद का बल कार्य करता है तो धन के क्षेत्र में त्याग का बल कार्य करता है। **त्याग से भाग्य** बनता है इस सिद्धांत के आधार पर शिवबाबा धन को सतोप्रधान बनाकर हमें देते हैं—हमारे लिये ही उसी का प्रयोग कराते हैं क्योंकि स्वयं तो अभोक्ता हैं।

धन से भाग्य बनता है यह तो भक्ति मार्ग में सब जानते हैं और उसी कारण दान की महिमा सभी धर्म तथा देशों में है। भक्ति मार्ग में भी दान का फल मिलता है। किन्तु वहां बीच में अन्य व्यक्ति वा साधन माध्यम थे। अब यहां तो बीच में कोई माध्यम या दीवार नहीं। डायरेक्ट हम अब प्रभु सेवा या कार्य अर्थ धन का प्रयोग करते हैं। वह सरकार कर (Tax) द्वारा व्यक्तियों से धन लेती है और लेकर के अपने कार्य में उस धन का उपयोग करती है। परन्तु उस कर (Tax) की लेन-देन में दुःख होता है क्योंकि उससे भाग्य नहीं बनता। परन्तु शिवबाबा के भंडारे में धन रखने से हमें एक प्रकार की अनोखी खुशी मिलती है और दिल होता है जितना हो सके उससे 10 गुना-100 गुना ज्यादा धन शिवबाबा के भंडारे में जमा करें। इस भावना का बल निराला है जो सिर्फ हम बच्चे ही जानते हैं।

शिवबाबा की याद में भोजन बनाने से वह पवित्र भोजन बनता है। उसी तरह शिवबाबा मालिक है और हम सब ट्रस्टी हैं और प्यारे बाबा की श्रीमत पर धन-व्यवहार करने से वह धन पवित्र धन बन जाता है। इस पवित्र धन के व्यवहार द्वारा शिवबाबा,संपत्ति के क्षेत्र के जितने भी सम्बन्ध हैं,वह सब पवित्र बनाते हैं। काला धन (Black money) को आज सब भारत में जानते हैं। काला धन का अर्थ यह नहीं कि कोई 100 रु. का नोट काला होगा परन्तु काला धन अर्थात् जिस धन से सरकार को यथायोग्य कर (Tax) नहीं दिया गया। काला बाजार (Black market) अर्थात् उचित दाम से ज्यादा दाम पर चीजें बेचना। काला बाजार का यह अर्थ नहीं कि वे चीजें काली होंगी। उसी तरह पवित्र धन अर्थात् जिस धन के अन्दर हमारी पवित्र भावना है अर्थात् जिसके शिवबाबा मालिक हैं और हम ट्रस्टी हैं और हम श्रीमत पर उसका उपयोग करते हैं। उस स्थूल धन में से सरकार का योग्य हिस्सा देने से काला धन भी सफेद धन (White money) बन जाता है तो यहां तो हम सारा ही धन शिवबाबा के भंडारी में जमा करते हैं तो क्यों नहीं पवित्र बनता होगा? सरकार धन को सफेद धन (White money) बनाती है तो यह शिवबाबा की अलौकिक तथा पारलौकिक ईश्वरीय शक्ति धन को पवित्र धन संपत्ति बनाती है।

शिवबाबा ने हम बच्चों को सेवा अर्थ विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक (Global Co-operation Spiritual Bank) नाम का साधन दियां है। उसी के द्वारा अब हमें धन को कैसे पवित्र बनाया जाये यह सबको सिखाना होगा? लौकिक बैंक में सिर्फ धन जमा होता है,वहां धन पवित्र नहीं बनता। शिवबाबा की इस बैंक में धन (पैसा) के अलावा बाकी सभी प्रकार की संपत्ति जमा हो सकती है। कविता, लेख, संगीत आदि अनेक प्रकार की कला रूपी संपत्ति इस बैंक में जमा होगी। तो देने वाले का पुरुषार्थ सफल होगा। पवित्र संपत्ति के सहयोग से उसका भाग्य बनेगा। उसकी अनुभूति उस आत्मा को इस दैवी परिवार का सदस्य भी बना सकेगी। अनेक रचना रूपी कृतियों के सहयोग का, अनेक प्रकार की कलाओं के इस प्रकार सतोप्रधान उपयोग से वह व्यक्ति विविध कलाओं से सम्पूर्ण बनेगा। आज का मानव धन का गुलाम हो गया है उसको सच्चा संपत्तिवान, धन संपत्ति का मालिक कैसे बनाया जाए इस लक्ष्य अर्थ जो नई सेवा का साधन का निर्माण शिवबाबा ने किया है उस साधन का नाम है "विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक।"

अब तक की सेवा में ज्ञान सुनने वाले व्यक्ति को विशेष कुछ करना नहीं पड़ता था। अब यहां सहयोग देना अर्थात् उसे एक कदम आगे आने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा। और शिवबाबा के अमर महावाक्य हैं जो मेरी ओर एक कदम आगे बढ़ता है मैं उसकी ओर हजार कदम बढ़ूंगा—"इस दृष्टि से देखा जाए तो यह बैंक है शिवबाबा के भंडारे से वरदानों की झोली भराने का माध्यम-साधन है।" विनाशी धन और अविनाशी धन क्या है, उन दोनों की शक्ति में क्या अन्तर है वह बताने का साधन है यह आध्यात्मिक बैंक। बाकी सब प्रकार के धन के लिये गायन है किसी की आग जलाए, चोर लूट जाए, राजा खाए या दबी रहे धूल में। तो संपत्ति को सफल करने का एकमात्र साधन है यह बैंक। सामान्य संपत्ति को पवित्र संपत्ति बनाने की फैक्टरी है यह बैंक। कीमत (Price) और मूल्य (Value) में क्या फर्क है, कौड़ी से हीरे तुल्य कैसे बना जाए या हीरे तुल्य हम कैसे बन सकें, हीरे तुल्य बनने की साधना माना यह बैंक। त्याग से भाग्य रूपी पारसमणि का स्पर्श कराने वाला यह बैंक है। खुशी का सौदा रत्नागर बाप से करने का बाजार है यह बैंक।

शेष पृष्ठ १२ पर

'ज्ञान-योग का क्रिकेट'

बी.के. जगदीश, पूना

जीवन के हर बात में, हर एक क्रिया में शिवबाबा का ज्ञान और याद लानी है। बाबा कहते हैं 'तुम बच्चे तो क्रिकेट अच्छी तरह जानते हो, लेकिन मैं तुम्हें ज्ञान और योग का क्रिकेट सिखाता हूं।' तो पहले बाबा हमें इस क्रिकेट का प्राईमरी कोचिंग सात दिन में देते हैं। उसके बाद तुरन्त ही हम इस कलियुगी दुनिया के मैदान में मैच खेलने जाते हैं। अम्पायर तो खुद बापदादा ही हैं। दो बैट्समैन ज्ञान और योग की बैट लेकर अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं। सामने दिखाई दे रहा जीवन का पिच वे अच्छी तरह परख रहे हैं। उनके पीछे मन के स्टम्प लगाये हुए हैं। अब ग्राऊंड में आ रहे हैं विकार और दुर्गण के फिल्डर्स! पूरी दुनिया इस रूहानी क्रिकेट मैच को देख रही है। स्टम्प के पीछे काम नाम का विकेट कीपर खड़ा है, वो तो विकेट कीपर नहीं बल्कि विकेट टेकर है। विकारों का राजा रावण माया की गेंद हाथ में लेकर बोलिंग कर रहा है। हम बच्चे उसके हर एक गेंद को अपनी बैट से ऐसे मार रहे हैं कि, पूछो नहीं और हर एक गेंद को विकार रूपी फिल्डर्स, पुरुषार्थ की बाऊंडरी लाईन के बाहर न जाने देने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन हमारा प्लेसिंग ही इतना अच्छा है कि गेंद तक फिल्डर्स पहुंच ही नहीं सकते। अच्छे बैटिंग का आदर्श और सलाह दूसरे एंड में खड़े,दीदी-दादी जैसे बैट्समैन द्वारा हमें मिल रहा है। माया की गेंद को बैट के ठीक बीच में लेकर पूरी ताकत लगाकर मारना है, अगर कभी बैट के साईड में गेंद लग गई तो कैच उड़ने का संभव है। अगर रन लेते समय मन का संयम न रहा तो रन आऊट होने का डर है। बैट्समैन के सामने पवित्रता की पिच है। यदि गेंद मारते समय गलती से उसके बाहर गये तो काम नामक विकेट कीपर द्वारा स्टम्प आऊट होने का डर है। हमें बॉल आऊट तो कभी भी नहीं होना है। हम बच्चों का लक्ष्य तो आखिर तक नॉट आऊट रहकर 108 रन बनाना है। रावण तो किसी तरह हमें आऊट करना चाहेगा। कभी वो इतना जोश में तेज गेंद फैंक देता है तो कभी स्पिनर बनके गुगली गेंद फैंककर हमें फंसाना चाहता है। लेकिन हम बच्चों की बैटिंग इतनी अच्छी है कि माया की गेंद को बेहतरीन शॉट लगा के कहां–से-कहां भगाते हैं। माया की गेंद स्टम्प के बहुत ही बाहर जाती है तो उसे वाईड बॉल समझकर छोड़ देना है। **बाबा कहते हैं "बच्चो, सबको दया दिखाना लेकिन माया को दया नहीं दिखाना।** अगर उसे दया दिखाई तो रावण के हाथों आऊट होना पड़ेगा।" हम बच्चे तो उस कोच को और उसकी दी हुई कोचिंग की याद हर क्षण रखके 108 रन बनाकर बिना आऊट हुए परमधाम के पवेलियन में जब जाते हैं तो बाबा कहते हैं "शाबाश बच्चे, तुमने तो कमाल की!" लेकिन बच्चे कहते हैं कमाल तो आपकी है बाबा जो आपने हमें इतने अच्छे तरीके से ज्ञान-योग का क्रिकेट सिखाया। बाबा हमें ना **गावसकर** बनाना चाहते हैं, ना कपिल देव वो तो हमें सिर्फ **देव** बनाना चाहते हैं। ऐसे हैं हमारे शिवबाबा ज्ञान क्रिकेट महर्षि। □

विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक पृष्ठ ११ का शेष

अब तक दुनिया गाती थी–तेरे द्वार खड़ा भगवान्, भक्त भर दे झोली... इस बैंक द्वारा हम कहेंगे तेरे द्वार खड़ा भगवान् भगत भर ले झोली। वहां वामन अवतार का गायन है। यहां पतित पावन के अवतार का गायन है। पतित-पावन परमपिता परमात्मा से दिव्यगुण, शक्ति, सम्बन्ध आदि-आदि में सम्पन्न बन परमपिता समान बनने का दिव्य पुरुषार्थ कराने की ज्ञान गंगा–पतित पावनी गंगा, जय-गंगे, हर गंगे माना यह बैंक।

पवित्र धन द्वारा पवित्र सृष्टि, स्वर्गीय दैवी सृष्टि का निर्माण कैसे किया जाए यह विधि का विधान इस बैंक के संविधान द्वारा हम सबको बतायेंगे। आज की सृष्टि में काला धन सब बनाते हैं अब पवित्र धन कैसे बने यह बात हम सिखायेंगे–इस बैंक के द्वारा। आज की सरकार कागज के धन का अर्थशास्त्र (Paper economy) सबको सिखाती है। अब सच्चे बैंक के आधार पर अर्थ द्वारा मोक्ष तो क्या परन्तु उसके भी ऊपर की दुनिया अर्थात् वैकुण्ठ की दुनिया यह सच्चे धन द्वारा बन सकती है, यह हम सबको बतायेंगे। धन का दान तो बहुत किया अब बाप समान सम्पन्न बन वरदान-वृष्टि करना है। यह मास्टर वरदाता बनने का सहज तरीका या माध्यम या साधन है यह बैंक। इस प्रकार अनेक तरीकों से इस बैंक के कार्य को हम समझ सकते हैं तथा इस साधन का प्रयोग कर सकते हैं। इससे हमारी कृति तथा सृष्टि की प्रकृति अर्थात् योग के प्रयोग की कृति से प्रकृति भी श्रेष्ठ होगी। प्रयोगशाला रूपी यह बैंक है आज तक हमने योग के प्रयोग किये अब मनुष्य की प्रकृति कैसे बदले, सृष्टि की प्रकृति कैसे बदले, धन से सभी की धारणायें कैसे निर्माण हों इस प्रकार विविध लक्षी पुरुषार्थ हमें करना है–इस बैंक द्वारा। □

विज्ञान और आध्यात्म

ले०-ब्रह्माकुमारी चक्रधारी, दिल्ली

एक नगर में चार भाई इकट्ठे रहते थे। चारों ने विद्या प्राप्त की। कई वर्ष तक कालेज और विश्वविद्यालय में पढ़ने के पश्चत एक तो जीव-शास्त्री और डाक्टर बन गया, दूसरे ने यातायात के साधनों से सम्बन्धित इंजीनियरिंग में निपुणता प्राप्त कर ली। तीसरे ने इलंक्ट्रोनिक्स में अद्वितीय प्रतिभा को पा लिया और चौथे ने इन विषयों का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया, कुछ और विषय भी पढ़े परन्तु विशेष बात यह कि वे तीनों तो सारा समय केवल उन्हीं विषयों के अध्ययन में लगे रहे जबकि चौथा भाई थोड़ा समय आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर अपने व्यवहार को श्रेष्ठ बनाने, जीवन में सद्गुण धारण करने, स्वभाव को शान्त बनाने और विवेक को सद्विवेक के रूप में पाने के लिए भी पुरूषार्थ करता रहा। परन्तु तीन भाई आध्यात्मिक शिक्षा के महत्त्व को न मानते हुए अपने उस चौथे भाई को 'व्यर्थ में समय गंवाने वाला' अथवा 'पिछड़ा हुआ व्यक्ति' मानकर उसकी अवहेलना किया करते थे।

कुछ समय से उन तीन भाइयों के मन में यह चल रहा था कि कोई ऐसा काम किया जाए जिससे उनकी विद्वता की सभी पर धाक बैठ जाए। अचानक से हुआ यह कि उनके एक भाई जो इलंक्ट्रोनिक्स का कार्य जनता था, ने आकर कहा-भाइयो, मैं जब रास्ते से आ रहा था, तब मैंने दो स्थानों पर पास-पास हड्डियाँ पड़ी देखीं। अवश्य ही इन्हें किसी ने मारा होगा या ये वहाँ मरे होंगे और किन्हीं ने इनकी माँस-मज्जा का अन्त कर डाला होगा। शायद कभी कोई ऐसा समय भी आ जाएगा कि मरे हुए को जिन्दा किया जा सकेगा।

इस पर जीव-शास्त्री व डाक्टर भाई बोला-"यह क्या कह रहे हो? मैंने अपने विज्ञान में ऐसा प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है कि हड्डियाँ मिल जाने पर मैं शरीर बना सकता हूँ और शरीर में फिर से जीवन उत्पन्न कर सकता हूँ। परन्तु इन सब बातों के लिए कुछ यन्त्रों व साधनों की ज़रूरत है जो ऐसे इलेक्ट्रोनिक तरीके से कार्य करें कि जिससे हम अपने वैज्ञानिक ज्ञान से यह असंभव-सा कार्य सम्भव कर दिखायें।

यह सुनकर इलेक्ट्रोनिक्स के विज्ञान वाला भाई बोला कि अगर आप बताएँ कि आपको कैसे साधन व यन्त्र चाहिए तो वो मैं बना सकता हूँ। इलेक्ट्रोनिक्स का भला मुझसे कौनसा राज़ छिपा है? परन्त साधन बनाने के लिए भी जगह-जगह जा जा कर सामग्री इकट्ठी करने के लिए यातायात के अच्छे साधनों की आवश्यकता है क्योंकि सब चीजें हमारे देश में, एक ही प्रदेश में तो मिलती नहीं।

यातायात के साधनों का विशेषज्ञ भाई बोला-"लो, यह कौन-सी मुश्किल बात है। यातायात के तीव्रगामी साधन मैं बना दूँगा या जो सामग्री चाहिए, मैं ला दूँगा। संसार के जिस कोने में पहुंचना हो, मैं पहुंचा दूँगा। द्वीप-महाद्वीप, सागर के तले व पर्वत की चोटी पर मैं पहुँचा दूँगा।"

चौथा भाई बोला-"पहले देख तो लो कि हड्डियाँ किसकी हैं? फिर सोचना कि बनाना भी है या नहीं।"

इस बात को सुनकर चारों वहाँ चल पड़े और जाकर देखा कि एक ढेर तो मनुष्य की हड्डियों का था व दूसरा ढाँचा शेर की हड्डियों का। जीव-शास्त्री अथवा डाक्टर भाई बोला कि पहले तो मैं इस शेर को पुनर्जीवित करूँगा।

आध्यात्मिक भाई बोला-"न भई न, शेर बनाओगे तो वो हमें ही मार डालेगा क्योंकि वो तो माँस भक्षी है और नरसंहारी भी। शेर बहुत ही खूंखार होता है। शेर तो दहाड़ता है, प्रेम और मधुरता का तो वह एक शब्द भी नहीं बोलता।"

सभी ने मिलकर चौथे भाई को कहा-"तुम चुप रहो, तुम कुछ विज्ञान तो जानते नहीं, केवल बातें करना जानते हो। हम जो बनायें उसे बनाने दो।"

कहानी लम्बी है, किस्से का सारांश यह है कि सभी ने अपने-अपने विज्ञान से साधन जुटाये और जीव-वैज्ञानिक ने हड्डियों के ढाँचे से शेर खड़ा कर दिया। वह शेर उन्हीं पर झपटा और उनका भक्षण कर डाला। अपने आध्यात्मिक भाई को तो उन्होंने पहले ही वहाँ से भगा दिया था।

शेष पृष्ठ २० पर

श्रीकृष्ण के नाम भक्त का पत्र और उसका उत्तर—

ले०ब्र०कु०व्ही०जे०वराडपांडे, दमोह

हे वृंदावन बिहारी श्रीकृष्ण जी, पालागन।

आपने परसों मेरे स्वप्न में आकर मुझे दर्शन दिया था और पूछा था कि भारत की हालत यदि बहुत बिगड़ चुकी हो तो मैं अवतार लूं। हे कुंज बिहारी जी, इस सम्बंध में मेरी राय यही है कि भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए आप यहाँ अवतार लेने की भूल कदापि ना करना क्योंकि समाज की बिगड़ी दशा सुधारने के लिये यदि आपने अवतार लिया तो आपका हुलिया बिगड़ जायेगा। यही मैं बताने जा रहा हूं।

आपकी लीलायें तो चिर परिचित हैं। यदि वे लीलायें आप अभी दोहरायेंगे तो सरकार उन पर प्रतिबंध लगा देगी। आपकी रासलीला मशहूर है। किन्तु अब यदि आपने गोपियों के साथ रास रचाने की हिम्मत की तो पुलिस आप पर लड़कियों के शीलभंग का अभियोग लगाकर दफा ३५४ ताजीराते हिन्द के तहत गिरफ्तार कर लेगी। हे माखन चोर आज तो आपको किसी के घर माखन नहीं मिलेगा बल्कि वनस्पति घी के डिब्बे मिलेंगे। वे तो आपको पसंद नहीं। यदि किसी के यहाँ माखन मिल जावे और आप चुरा लेवें तो तत्काल पुलिस आपको चोरी के इल्जाम में गिरफ्तार कर लेगी। आपको गोपियों के चीर हरण की भी आदत है लेकिन यह लीला भी सफल नहीं हो पायेगी क्योंकि कलियुगी गोपियों ने तो अब वस्त्र ही इतने कम पहनने शुरू कर दिये हैं कि आप ढूढ़ते फिरेंगे किन्त मिलेंगे नहीं। यदि किसी गोपी के वस्त्र दिखाई भी दें और आप चीर हरण कर भी लें तो उस गोपी का बाप पुलिस में रपट लिखा देगा और आप मुसीबत में फंस जायेंगे।

यदि आपने मरली बजाकर किसी को रिझाना चाहा तो कोई असर नहीं होगा। किन्त यदि आप गिटार बजायेंगे तो गोपियां और गऊयें भागती चली आयेंगी।

अब आप शिशपाल की भांति किसी की गर्दन स्वदर्शन चक्र से नहीं काट सकते क्योंकि पलिस शस्त्र अधिनियम के तहत अवैध रूप से शस्त्र रखने के आरोप में गिरफ्तार कर लेगी और हत्या के जुर्म में फांसी पर लटकना पड़ेगा।

इन सब परिस्थितियों पर विचार करते हुये, हे कृष्ण कन्हैया, मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप भूलकर भी भारत के इस माहौल में जन्म ना लेवें। वैसे भी भारत में आजकल अवतारों की काफी भीड़ भाड़ है, आपकी पूछ कहां होगी। बस थोड़े लिखे को बहुत समझिये। यदि आपने इसके बावजूद भी जन्म लिया तो आपका जो हाल होगा उसके लिये मैं जिम्मेदार नहीं रहूंगा।

आपका प्रिय भक्त किशनदास

प्रिय भक्त किशनदास, ईश्वरीय याद स्वीकार हो। पत्र मिला। प्यारे, तेरे अज्ञान पर मुझे तरस आता है। क्या भगवान को अवतार लेने के लिये मनुष्य की राय लेनी पड़ती है? क्या सचमुच मैंने तुझे दर्शन देकर तेरी राय पूछी थी? कहीं तुझे भ्रम तो नहीं हो गया? वास्तव में तेरे ही मन ने प्रश्न पूछा होगा, तेरे ही मन ने जवाब दिया होगा। ज्ञान प्रकाश द्वारा तेरा भ्रम इस पत्र द्वारा दूर करना मैं आवश्यक समझता हूँ।

तेरा यह मंतव्य तो ठीक है कि श्रीकृष्ण को इस कलियुग में जन्म नहीं लेना चहिये। वास्तव में मैं १६ कला संपूर्ण, संपूर्ण निर्विकारी, सर्वगुण संपन्न देवता इस रौरव नर्क में जन्म कैसे ले सकता हूँ। तुझे मालूम होना चहिये कि द्वापर से नारकीय दुनिया का प्रारंभ हो जाता है। मैं तो सतयुग का महाराज कुमार हूँ, सतयुग में जन्म लेता हूँ जिसे बैकुंठ कहते हैं। इसलिये मुझे बैकुंठनाथ भी कहते हैं। इस गलतफहमी में ना रहना कि मैं द्वापर में आया था।

प्यारे, बिगड़ी दुनिया को बनाने वाला परमात्मा है। उसे बिगड़ी को बनाने वाला कहते हैं। यदि वह इस बिगड़ी दुनिया में नहीं आयेगा तो उसे सुधारेगा कौन? इसलिये जब जब दुनिया बिगड़ती है तो वह इस कलियुग के अंत में दुनिया को सुधारने अर्थात् धर्म की स्थापना करने आता ही है, उसका आना अनिवार्य है अन्यथा इस धरा पर स्वर्ग कैसे स्थापित होगा? सफाई करने वाले को गंदगी में आना ही पड़ता है। इसलिये तू चिंता मत कर। मैं नहीं आऊंगा। किन्तु मेरा और तेरा बाप जरूर आयेगा। वह आ चुका है, नर्क को स्वर्ग बनाकर चला जायेगा। मेरा, तेरा, सभी आत्माओं का पिता परमात्मा शिव है जिसे परमपिता कहते हैं। उसी का काम है पतित दुनिया को पावन बनाना। तेरा मेरा काम नहीं इसलिये तो चित्रों में श्रीकृष्ण को शिव की पूजा करते हुये दिखाया गया

है। जिसका यादगार गोपेश्वर मंदिर है। मैं तो तेरा बड़ा भैया हूँ। मैं परमात्मा नहीं, बल्कि देवता हूं, चौरासी का चक्कर लगाते हुये मैं भी कलियुग में नर्कवास भोगता हूँ। पुनः परमपिता आकर मुझे देवता बनाता है और मैं श्रीकृष्ण नाम से सतयुग के प्रारंभ में जन्म लेता हूँ।

अब रहा सवाल मेरी लीलाओं का। प्रिय भक्त, तुझे मालूम हो कि जिन लीलाओं का संबंध मुझसे जोड़ा गया है वास्तव में वे मेरी लीलायें ना होकर मेरे और तेरे बाप की लीलाऐं हैं अर्थात् परमात्मा (भगवान) की लीलायें हैं, भगवान शिव की लीलायें हैं। शिवलीलाओं का गायन वर्णन शिव लीलामृत नामक ग्रंथ में शायद तूने पढ़ा होगा।

प्यारे, मुरली ना तो काठ की बजाई गई न मैंने बजाई। किन्तु कलियुग के अंत (पुरूषोत्तम संगम युग) में ज्योतिस्वरूप परमात्मा शिव ने ज्ञान की मुरली बजाई जो ना केवल मैंने बल्कि अनेक आत्माओं ने सुनी जिसे सुनकर उन्होंने अतींद्रिय सुख और आनंद का अनुभव किया। वे ही गोप गोपियां हैं जिनका संबंध शिव और शिव की ज्ञान मुरली से है। यदि तूने मुरली नहीं सुनी होगी तो अभी भी सुन सकता है, वह चालू है। मैं तो पूरी मुरली सुन चुका हूँ। मेरी चिंता मत कर, अपनी चिंता कर और सुवर्ण अवसर का लाभ ले ले। जो इस मुरली को सुनता है वह सतयुग में चैन की बंशी बजाता है। इस ज्ञान मुरली के सामने गिटार नाचीज है, तुच्छ है।

प्यारे, कान खोलकर सुन ले, लड़कियों के शीलभंग का, वस्त्रहरण का, एवं मक्खन चोरी का इलजाम पुलिस ने कभी मुझ पर नहीं लगाया, किन्तु तुम भक्तों ने लगा दिया है। पुलिस तुमसे ज्यादा समझदार है। मुझ पर तुमने झूठा इल्जाम लगाया इसलिये तुमको कारण बताओ नोटिस देना पड़ रहा है कि क्यों ना तुम पर मानहानि का मुकदमा चलाया जावे। नोटिस का जवाब सात दिन के भीतर देना। तुम भक्तों ने वास्तविक रहस्य न जानकर अर्थ का अनर्थ कर दिया। अब मैं तुझे रहस्य बताता हूँ कान खोलकर सुन ले।

वनस्पति घी के डिब्बे तुझे ही मुबारक हों। मैं तो ईश्वरीय ज्ञान का मनन चिंतन मंथन करके विश्व राजाई का नवनीत (माखन) योग बल से प्राप्त कर लेता हूँ जिसका दुनिया वालों को पता ही नहीं चलता। हे भक्त, यह देह आत्मा का वस्त्र है। दुनिया वालों को इस वस्त्र का भान है किन्तु इस वस्त्र को धारण करने वाली वस्त्रधारी आत्मा का भान नहीं रहा इसलिये परम पिता शिव हम देहधारियों को देह रूपी वस्त्र के भान से छुड़ाकर आत्मा के भान में रहने का पुरूषार्थ कराता है। विदेही अवस्था में रहने की शिक्षा देता है क्योंकि विदेही अवस्था ही मुक्ति की अवस्था है। वह शरीर के वस्त्र का हरण नहीं करता बल्कि आत्मा के वस्त्र का हरण करता है। देह के वस्त्र हरण करने में अश्लीलता है, आत्मा का वस्त्र हरण करने में अलौकिकता है। इसलिये भगवान की लीला अलौकिक कहलाती है ना कि लौकिक।

प्रिय भक्त शिशुपाल वध और स्वदर्शन चक्र का रहस्य भी समझ ले। हथियार द्वारा किसी का वध करना तो पाप कर्म है। भगवान कैसे कर सकता सोचने की बात है। किन्तु तुम भक्तों ने इन बातों पर विचार करने की कभी कोशिश नहीं की, भावना में बह गये और लकीर के फकीर बने रहे। स्वदर्शन अर्थात् आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा के ८४ के चक्कर का ज्ञान—इस चक्र का बार-बार सिमरण करते रहने से माया का अंत हो जाता है। ऐसा ही मैंने किया। मैंने शिशुपाल नामक व्यक्ति की हत्या नहीं की बल्कि माया राक्षस का वध किया जिसमें अलौकिकता है। मेरे प्रत्येक कर्म अलौकिक हुये। ऐसे कर्म मुझे उस परम शिक्षक परमात्मा ने सिखाये। इस पर भक्तो ने दंत कथाएं बना दीं। इसलिये तू मेरी चिन्ता ना कर। चिन्ता करने की तेरी पुरानी आदत है। चिंता छोड़ प्रभु चिंतन में लग जा तो तेरा बेड़ा पार हो जायेगा और सदा के लिये चिंता मुक्त हो जायेगा। ओम शान्ति।

उदगीर में 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम का उद्घाटन ब्र.कु. उषा बहन दीप जलाकर कर रही हैं। ब्र.कु. महानन्दा तथा अन्य भाई-बहनें परमात्म-याद में खड़े हैं।

अन्तर्मुखी

ब्र० कु० आत्मप्रकाश, आबू पर्वत

योग एक साधना है जिसके द्वारा आत्मा पावन बनती है। ज्यों ज्यों हम योगाभ्यास करते हैं, हमें नित्य नये नये अनुभव होते रहते हैं और योगी के जीवन में विशेष परिवर्तन आने लगता है। लेकिन इस महानतम् साधना में सफलता पाने हेतु साधक को अन्तर्मुखी बनना परमावश्यक है। जो सदा अन्तर्मुखी रहता है वह सदा सुख के सागर में लहराता है और इस संगमयुगी ईश्वरीय मौजों के योगी जीवन का सम्पूर्ण आनन्द लेता है।

अन्तर्मुखता प्रयोगशाला है–

जब एक अनुसंधाता किसी एक पृष्ठ भूमिका को लेकर अनुसंधान रत रहता है तो इसे यह ध्यान रहता है कि मेरी यह मेहनत मुझे सफलता के शिखर पर पहुँचाने में एकाग्रता ही एक मात्र समर्थ-साधन है। इसी प्रकार योगी भी एक अनुसंधाता है, योग उसकी पृष्ठ भूमिका है और अन्तर्मुखता उसके अनुसंधान की प्रयोगशाला है तथा एकाग्रता उसे योग की उच्चतम स्थितियों का अनुभव कराते हुए सम्पूर्णता अथवा फरिश्तेपन यानि विकर्माजीत स्थिति तक पहुँचाने का अद्भुत एवं अद्वितीय साधन है।

अन्तर्मुखता ही गुफा है–

हमारा ऐतिहासिक साहित्य ऐसा प्रमाणित करता है कि प्राचीन काल में ऋषि मुनि तपस्या करने के लिए गुफाओं–कन्दराओं में जाया करते थे। इस सिद्धान्त के पीछे एक ऐसी मान्यता लोगों के मन में घर कर गयी थी कि गुफा में शहरी अथवा बस्ती के शोर-शराबे से दूर शान्त एकान्त वातावरण होता है किन्तु वास्तव में मनुष्य यानि आत्मा का शरीर में रहते हुए अथवा समाज में रहते हुए अन्तर्मुखता रूपी गुफा का सहारा लेकर शान्त तथा एकान्त का अनुभव करना रहज ही नहीं सरस भी है। हाँ, ये सम्भव तब ही है जब हम स्वय को योग तथा मनन-चिन्तन का अधिक अभ्यासी बनायें।

देहीअभिमानी ही अन्तर्मुखी रह सकता है–

जब हम आत्मिक स्थिति में स्थित रहते हैं तो स्वतः ही शान्त स्वरूप रहते हैं और अन्तर्मुखी सहज अनुभव करते हैं। उस स्थिति में हम चाहें तो भी आवाज में आना पसंद नहीं करते। वास्तव में योगी अधिकाधिक अन्तर्मुखी बनता जाता है।आत्म-अभिमानी ही अन्तर्मुखता के मर्म को समझ सकता है क्योंकि अन्तर्मुखता का अर्थ है स्वयं की अन्तर निहित शक्तियों को जानना तथा उनका विकास कर सदुपयोग में लाना।

अन्तर्मुखता भंग क्यों होती है?

जहाँ अन्तर्मुखता जैसा अनुपम दिव्य गुण आत्मा को शक्तिशाली बनाने में समर्थ है वहीं अन्तर्मुखता का अभाव आत्मा को निर्बल बना देता है। अब सवाल यह है कि अन्तर्मुखता हम से दूर क्यों होती है, इसके मोटे रूप में दो विशेष कारण हैं–एक भौतिक पदार्थों की इच्छायें जिसमें मान, नाम, शान भी आ जाते हैं और दूसरा संगदोष। इसलिये कहावत मशहूर है कि सत्संग तारे, कुसंग बोडे।

हाँ तो,अन्तर्मुखता कायम रखने के लिये हमें ये अच्छी तरह ध्यान में रखना होगा कि इन दोनों-पुरूषार्थ में बाधक,वस्तुओं से हमें बचना है और इसके लिये सहज उपाय यही है कि हमें यह निश्चय पक्का हो जाय कि बाबा में ही मेरा संसार है। बस-यही स्थिति और स्मृति इच्छा मात्रम् अविद्या बनने का मूल मंत्र है।

इसी चिन्तन से कुसंग का परहेज करना भी हमें अच्छी तरह आ जाएगा। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमें किसी आत्मा से घृणा करनी है। बल्कि यदि कोई आत्मा इस प्रकार अपने पुराने संस्कारों के वशीभूत हुई भी है तो उसे शुभ-भावनाओं और श्रेष्ठ कामनाओं का योग दान दे उसे उस परचिन्तन की दल-दल से निकाल कर स्वचिन्तन के रास्ते पर लाने का भी भागीरथ कार्य भी हमें ही करना है। यानि उसको भी अन्तर्मुखता का पाठ पक्का कराकर उसकी स्वयं की अन्तरनिहित शक्तियों को विकसित कराने का सहभागी बनना है।

व्यर्थ बोल आत्मा का बल नष्ट करते है–

वास्तव में सदा व्यर्थ बोल बोलते रहना यह रॉयल आत्मा की निशानी नहीं है। इसको समझाते हुए सन् १९७८ में बाप दादा ने कहा था–कम और धीरे बोलना यह रॉयल आत्मा की निशानी है। कम और धीरे बोलने से हमे तीन फायदे होते हैं–

१. कम और धीरे बोलने से आत्मा की शक्ति बच जाती है। जैसे कार चलाते समय रास्ते में कोई व्यक्ति या रूकावट न होते हुए भी अगर कार का हार्न बजाते ही रहें, तो कार की बैटरी समाप्त हो जाएगी। ऐसे ही अगर बिना कारण हम अपना मुख का बाजा बजाते ही रहें तो खालीपन की या थकावट की महसूसता होती है। जो आत्माएँ कम, मीठा और धीरे बोल बोलते हैं वे व्यर्थ जानेवाली शक्ति को बचाकर स्टॉक बढ़ाते रहें तो विनाश काल में अपनी एकरस स्थिति

बनाने में सफल रहेंगे।

२. कम और धीरे बोल,बोल कर हम अपरोक्ष रूप में एक दूसरे को शिवबाबा की याद दिलाने की गुप्त सेवा कर सकते हैं।

३. अगर हम ज्यादा बोलते रहते हैं तो समझो हम इस वातावरण में कुछ जमा कर रहे हैं। बजाय शान्ति स्थापक के शान्ति तोड़क बनते हैं। शान्ति स्थापन करने के कार्य में सहयोगी न बनने से बाबा की आशीर्वाद पाने से वंचित रहेंगे।

हमारे बोल दूसरों को बल प्रदान करने वाले हों–

अन्तर्मुखी सदा गिनती के बोल बोलता है, इसलिए उसके बोल अमूल्य तथा शक्तिशाली होते हैं। वह सदा तपस्या में लीन रहता है। इस कारण उसके बोल औषधि अथवा संजीवनी बूटी का कार्य करते, कमजोर आत्माओं में नया उमंग उल्लहास जागृत करते हैं। वो बोल उन्हें बलवान बनाते हैं और सचमुच ऐसे बोल सुननेवाले ऐसा अनुभव करते हैं कि हम पर सुखों की व वरदानों की वर्षा हो रही है।

के व्यर्थ बोल भी न हों–

हमारे बोल शक्तिशाली तभी निकलेंगे, जब हमारे मन में व्यर्थ संकल्प रूपी व्यर्थ बोल नहीं निकलेंगे। क्योंकि मन के समर्थ बोल समर्थ संकल्प के रूप में निकलते रहेंगे तो स्वतः मुख से भी समर्थ बोल निकलते हैं। ऐसा न हो कि मन में अनेक प्रकार के तूफानो रूपी ज्वार भाटे उमड़ते रहें। अन्तर्मुखता के साथ-साथ जहाँ हमारा मन निश्छल, निष्कण्टक, परोपकारी, उदार, निष्टावान और आस्थावादीहोवहीं संतुष्ट और प्रशान्त का होना भी निहायत जरूरी है।

उसको अन्तर्मुखी कभी नहीं कहेंगे जो कि बाहर से स्वयं को अन्तर्मुखी दिखाए और मन में ईष्या, द्वेष तथा असन्तुष्टता और अशान्ति का बीज अंकुरित हो रहा हो।

अन्तर्मुखी सदा ज्ञान सागर में लहराता रहता है–

वास्तव में अन्तर्मुखी सदा ज्ञान सूर्यमुखी रहता है। उसका ध्यान सदैव ज्ञानसूर्य परमात्मा पर एकाग्र रहता है जिससे सदैव हर परिस्थिति में उसका मन तरोताजा रहता है।

उसकी बुद्धि में सदा ज्ञानसूर्य से प्राप्त हुआ ज्ञान टपकता रहता है। सदैव उस ज्ञान रत्नों पर मनन-चिन्तन चलता रहने से वह मग्न स्थिति का अनुभव करता रहता है। इसलिए वह सदा सुख का अनुभव करता रहता है। उसके सुख की लहर कोई भी छीन नहीं सकता।

अन्तर्मुखी अनेक विकर्मो से बचता है–

पुरूषार्थी को यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिए कि हमारे बोल हमारी मनः स्थिति को स्पष्ट करते हैं। अतः मन शान्त,शीतल हो ऐसा हम अन्तर्मुखी बनकर अन्तर मन में झाँककर देखते रहें। कि कहीं हमारे मन में सूक्ष्म पाप तो नहीं छिपा हुआ है, क्या अपकारी पर भी उपकार की वृत्ति हम में विकसित हो चुकी है पूर्णरूप से या अभी भी ईष्या, द्वेष, घृणा, वैमनस्य आदि बुराईयों का कहीं सूक्ष्म अंशमात्र भी तो हमारे मन में नहीं है। जो अवसर पाते ही अन्तर्मुखता रूपी लक्ष्मण रेखा को लाँघ कर बाह्यमुखता रूपी रावण के रूप में अन्य किसी आत्मापर कटु वचनों रूपी विषैले बाणों के प्रहार से मुझे पराजय की गहरी खाई में धकेल कर विकर्मों का भागी तो नहीं बना देगी। इसलिए अन्तर्मुखता में रहकर अपनी सूक्ष्म चैकिंग करते रहने वाला ही विकर्मों से बचता है।

वास्तव में अन्तर्मुखी ही अपनी चरम-सीमा तक पहुँच सकता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति ही हर बात को समाकर आगे बढ़ता और बढ़ाता रहता है। वह दूसरों पर महानता की छाप छोड़ता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति को आन्तरिक रस मिलता रहता है जिससे वह उपराम होने लगता है। ऐसा व्यक्ति ही एकान्त का आनन्द ले सकता है।

अन्तर्मुखी लोकप्रिय बनता है–

ये तो सभी जानते हैं कि पुरूषार्थी जीवन की तीन सीढ़ियाँ पार करनी होती हैं सम्पूर्णता प्राप्त करने के लिए। और वे सीढ़ियाँ हैं मन पसंद, प्रभु-पसंद और लोक-पसंद जिसमें लोक पसंद होना सभसे कठिन विषय है क्योंकि मनपसंद होना उसके अपने हाथों में है और प्रभु ने तो पसंद ही कर लिया तभी तो उसने अपनाया है। किन्तु समाज में अथवा संगठन में अनेकों प्रकार और विचारों के लोग रहते हैं, उनकी पसंदी तब ही है जब हम अपकारी पर भी उपकार की भावनाओं को प्रथम पंक्ति में स्थान देंगे तथा किसी प्रकार की भी आत्मा हो उसके लिए हमारे मन में स्नेह बना रहे तथा उसको अर्न्तमुखी होकर शुभभावनाओं का योगदान देते रहें तो वह भी स्वतः ही बदल जाएगा और आप उसके स्नेह के पात्र बनेंगे यानि वह आपको सम्मानित दृष्टि से देखने लगेगा और यही बात समाज पर भी निर्भर करती है।यदि किसी ने चार बातें कहीं और आपने प्रत्युत्तर में एक ही कही, वह लोक-प्रिय नहीं बनने देती है।

तो आओ, हम सभी पुरूषार्थी इस अनोखी अन्तर्मुखता रूपी गुफा में बैठकर एक परमात्म-ध्यान में लीन हो जाएं और उसके सभी गुण और शक्तियों पर पूर्णतया अधिकार पाकर स्वयं को मालामाल बनाएं और सम्पन्नता तथा सम्पूर्णता को प्राप्त करें।

रजरप्पा (बोकारो) में मकर संक्रान्ति के उपलक्ष्य में आयोजित 'शिव-दर्शन' प्रदर्शनी का उद्घाटन भ्राता चन्द्रगुप्त सिंह, बी.डी.ओ तथा भ्राता सत्येन्द्र तिवारी, सी.ओ. दीपक जगाकर कर रहे हैं।

सिवनी—भ्राता एस.पी. निगम, स्वास्थ्य सचिव, मध्यप्रदेश को इंदौर में होने वाले 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्पूर्ण स्वास्थ्य सम्मेलन' में पधारने हेतु आमंत्रण देते हुए ब्र.कु. पूर्णिमा बहन तथा अन्य।

जोरहाट (आसाम)—रोटरी मेले में आयोजित आध्यात्मिक प्रदर्शनी मे मंडप में पधारे भ्राता अबिजित शर्मा जी, स्वास्थ्य मंत्री, आसाम को ईश्वरीय साहित्य भेंट करती हुई बी.के. मंजू बहन।

बरनाला में 'विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक' का उद्घाटन भ्राता एम.एल. वाधवा, शाखा प्रबन्धक, न्यू बैंक ऑफ इंडिया, बी.के. अमीर चन्द तथा अन्य कर रहे हैं।

काठमांडू (नेपाल)—स्नेह-मिलन के कार्यक्रम में पधारे भ्राता नर बहादुर बुढ़ाथोकी, पंचायत तथा स्थानीय विकास सहायक मंत्री एवं उनकी पत्नी, भ्राता गोरख बहादुर श्रेष्ठ, उद्योगपति, भ्राता हरी भक्त रंजितकार, सहायक जोनल आयुक्त, भ्राता वासुदेव शर्मा, मुख्य आयुक्त, भ्राता देव मन्दिर तथा अन्य ब्र.कु. भाई-बहनें के साथ दिखाई दे रहे हैं।

तलवंडी में हुए 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के समारोह का एक दृश्य। मंच पर तलवंडी डिवीजन सी.आर.पी. के चीफ भ्राता संतोष कुमार जी तथा अन्य अतिथिगण विराजमान हैं।

हीन-भावना

ले० ब्रह्माकुमारी सुधा, शक्ति नगर, दिल्ली

हरेक व्यक्ति के कार्य करने की अपनी एक क्षमता होती है अथवा उसमें अन्तर्निहित अपनी कुछ योग्यताएँ हुआ करती हैं। उनको न पहचानते हुए स्वयं को अयोग्य मान लेना, अक्षम और हरेक कार्य को वास्तविक से अधिक कठिन मान लेने के भाव को 'हीन-भावना' कहते हैं। जिन लोगों में हीन-भावना उत्पन्न हो जाती है, वे प्रायः हर परिस्थिति में कहा करते हैं-"यह कार्य मैं नहीं कर सकूँगा, इसलिए मैं पहले से बता रहा हूँ, यह किसी और को दे दीजिए। अमुक व्यक्ति मुझसे अच्छा कर सकता है, इसलिए यह कार्य उससे करा लीजिए।..." इस प्रकार वे प्रायः हर दूसरे व्यक्ति से स्वयं को हीन मानने लगते हैं। अगर कोई उन्हें समझाता भी है कि ऐसी बात नहीं है और कि वे यह कार्य कर सकते हैं अथवा कि पहले भी ऐसे कार्य किये हैं तो वह व्यकित कहता है-"मैंने पहले किये होंगे, परन्तु अब मैं नहीं कर सकता। यही तो मैं कह रहा हूँ कि अब मुझे छोड़ दिजिए।" इस प्रकार उत्साह दिलाए जाने के बावजूद भी उसमें आत्म-विश्वास पैदा नहीं होता और वह स्वयं को हीन माने चला जाता है। अगर उसे छोड़ देते हैं तो भी उसके मन में यह विचार आता है कि "मैं यह कार्य नहीं कर सकता था, इसलिए मुझे छोड़ दिया गया" अथवा वह यह सोचता है कि " देखिए, इन्होंने मुझे छोड़ दिया। अगर मैं कर लेता तो शायद ठीक भी हो जाता और आगे के लिए भी मैं कार्य कुशल हो जाता। परन्तु इन्होंने मुझे इस योग्य ही नहीं समझा और दूसरे को अधिक योग्य समझकर यह कार्य उसे दे दिया, ये सभी लोग मुझे अयोग्य मानते हैं...." इस प्रकार दोनों ही प्रकार के व्यवहारों से वह स्वयं को हीन मानता हुआ चला जाता है। इस प्रकार हीनता की तह पर तह उस पर जमती हुई चली जाती है। और, अब उस व्यक्ति को सामान्य स्थिति में लाना स्वयं उसके लिए व दूसरों के लिए एक समस्या बन जाता है।

हीन-भावना वाला क्या करे?

जिस व्यक्ति में हीनता का संस्कार बनता जाता है, उसे यह समझना चाहिए कि कार्य करने ही से कुशलता आती है। करेंगे ही नहीं, अभ्यास ही नहीं होगा तो कुशलता कहाँ से आएगी ? कोई अयोग्य व्यक्ति भी अभ्यास से तो योग्यता प्राप्त कर लेता है और वह अभ्यास ही न करे तो उसमें योग्यता का विकास अथवा योग्यता का आगमन कैसे होगा? कहावत है कि " करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान" कार्य करने से ही उसमें सुगमता का व्यवहारिक परिचय मिलता है और उसे समझ लेने के बाद उस अनुभव से व्यक्ति पहली बार नहीं तो दूसरी बार या तीसरी बार अथवा चौथी बार ठीक कर ही लेता है। जो व्यक्ति कदम चलाएगा ही नहीं, वह तो वहीं खड़ा रहेगा वह कहीं पहुँचेगा ही नहीं। कार्य करने से कम-से-कम इतना तो सन्तोष होता है कि कोशिश की गई और मनुष्य के मन में यह भाव तो पैदा होता ही है-"बस, एक-दो बार मैं और करूँगा फिर तो ठीक कर ही लूँगा।" इस प्रकार मनुष्य में कुछ थोड़ी उम्मीद तो बंधती ही है और न करने से हमारी योग्यताएँ प्रयोग न होने के कारण कुण्ठित हो जातीं। अतः जब किसी कार्य को करने का अवसर आता है तो स्वय को उससे वंचित नहीं करना चाहिए। अपने को वंचित करना स्वयं को हानि पहुँचाना है। अपने ही जीवन में खड्डे खोदना अथवा दीवारें खड़ी करना है।

सोचना यह चाहिए कि जब दूसरे व्यक्ति इस कार्य को कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता। अच्छा, अगर मैं वैसे नहीं भी कर सकता जैसे कि दूसरे कर सकते हैं तो सीखने से मार्ग-प्रदर्शना लेने से, बार-बार अभ्यास करने से तो जानकारी हो ही जाएगी और न करने से तो अयोग्यता की खाई बढ़ती जाएगी। इस प्रकार यह मानकर कि चाँस लेते-लेते व्यक्ति चाँसलर बन जाता है, मनुष्य को चाहिए कि हीन-भावना को छोड़कर आत्म-विश्वाास और उत्साह से व्यकित बड़े-बड़े कार्य करने में सफल हो जाता है।

दूसरे व्यक्ति क्या करें ?

हीन-भावना वाले व्यक्ति के मित्र-सम्बन्धी अथवा शुभ चिन्तक ऐसा न समझें कि "यह व्यक्ति हमारी बात मानता तो है नहीं और अपनी जिद्द पर अड़ा रहता है, इसलिए इसे छोड़ दिया जाए।" उन्हें यह याद रखना चाहिए कि छोड़ देना उस व्यक्ति के विकास के लिए हानिकारक है और स्वय के लिए भी दिनोदिन समस्या को बड़ा करना है। शुरू-शुरू में उसको सहज कार्य बताकर, उसके लिए सहयोगी बनकर अथवा उसे अपने साथ मिलाकर उसे उस कार्य का अभ्यास कराना चाहिए और धीरे-धीरे वह कार्य उसी पर ही छोड़ देना चाहिए। और, उसे यह आभास नहीं होने देना चहिए कि यह कार्य कर भी पायेगा या नहीं।

सबसे बड़ी बात यह है कि मित्र-सम्बन्धियों अथवा शुभ चिन्तकों को उसके सामने दूसरों से उसकी तुलना करते हुए यह नहीं कहना चाहिए कि उस कार्य को बेहतर कर लेंगे अथवा कि हो सकता है कि वह कार्य को न कर पाये परन्तु अन्य अमुक व्यक्ति उसे कर लेगा । किसी व्यक्ति की उपस्थिति में उसके विषय में ऐसी चर्चा ही उसमें हीन-भावना पैदा करती है।

इसके अतिरिक्त हीन-भावना के कारण उस व्यक्ति के स्वभाव में जो अन्य पेचीदगियाँ पैदा हो गई हैं अथवा जो अन्य आदतें पड़ गई हैं, उनकी भी आज्ञा उस व्यक्ति की उपस्थिति में नहीं देनी चाहिए वर्ना वह व्यक्ति उस भाव से निकलने की बात को बहुत कठिन मान लेगा। उन्हें समझना चाहिए कि हीन-भाव निकल जाने से अन्य सम्बन्धित आदतें स्वतः ही ढीली पड़ती जाएंगी ।

हीन-भाव वाले व्यक्ति का उमंग-उत्साह बढ़ाने, उसे सहयोग देने, उसकी कठिनाइयों को कम करने की कोशिश करना ही उसके प्रति शुभ चिन्ता प्रगट करना है। बार-बार और जगह-जगह इस बात का उल्लेख कि उस व्यक्ति में हीन-भावना हो गई है, उसके लिए शुभ नहीं। स्वयं ही सामान्य व्यवहार करने से उसको भी सामान्य बनाया जा सकता है।

इस प्रकार, वातावरण को युक्ति युक्त बनाना स्थिति के लिए पहली आवश्यकता को पूरा करना है। अधिक चिन्ता या चिन्तन करने की बजाय थोड़ा-सा युक्ति का प्रयोग करना, सूझ का सहारा लेना ज्यादा जरूरी है।

परन्तु "मैं आत्मा हूँ, मैं अपने आदि स्वरूप में समर्थ हूँ, मैं सर्वशक्तिवान परमात्मा की सन्तति हूँ, स्वयं परमात्मा मेरा सहायक है...." इस प्रकार के आत्म-चिन्तन अथवा परमात्म-चिन्तन (Meditation) का अभ्यास कराना ही व्यक्ति में आत्म-विश्वास को दृढ़ करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है जिससे मनुष्य में योग्यताओं का विकास होता है, उसका मनोबल दृढ होता है और परमात्मा से शक्ति प्राप्त कर के वह हर कार्य कर लेता है।

पृष्ठ १३ का शेष

आप सोचते होंगे कि हड्डियों से जीता-जागता शेर बनाना तो असम्भव है। कहानी का भाव तो यह है कि आज वैज्ञानिकों ने मिलकर बहुत-सी असंभव बातों को संभव कर लिया है और अपने उस विज्ञान के गर्व में वे आध्यात्मिक लोगों को पिछड़ा हुआ अथवा व्यर्थ में समय गंवाने वाला मान लेते हैं। यहाँ तक कि वे यदि कोई जीवन-घातक कार्य करने लगें और आध्यात्मिक व्यक्ति उन्हें सदविवेक की, अथवा जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने की बात कहे तो वे उसे-"चुप रहो, तुम जानते कुछ भी नहीं"-कह कर भगा देते हैं।

परन्तु आज हो क्या रहा है? वैज्ञानिकों ने मिलकर नर संहार के साधन रूप सिंह को बना दिया है जो मानव-समाज को हड़प कर जायेंगे। काश कि वैज्ञानिक अपने आध्यात्मिक भाई की भी बात सुनते और उसे अपने से अलग कर भगा न देते। वे सिंह की बजाय अगर मनुष्य बनाते अर्थात संहार साधन न बनाकर मनुष्यता और दया के भाव जागृत करते तथा सहानुभूति और प्रेम के प्राण फूंकते तो संसार का भला होता।

पोरसा डिग्री कालेज में एक आध्यात्मिक प्रवचन के अवसर पर प्राचार्य जी व बी.के. नन्दा बहन दिखाई दे रही हैं।

बड़ौत सेवा केन्द्र के वार्षिकोत्सव पर सेन्ट्रल बैंक मैनेजर भ्राता गुप्ता जी व जैन कालेज के प्रधानाचार्य भ्राता सुमित प्रसाद जैन जी पधारे। आप लोगों को शिव बाबा का प्रसाद व सौगात भेंट की गयी।

"धार्मिक पुस्तकें और आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान"

ब.कु. उर्मिला चण्डीगढ़

पिछली कुछ शताब्दियों से वनस्पति, मानव स्वभाव संगीत, अर्थ, समाज आदि क्षेत्रों में जो परिवर्तन और शोध हुए हैं, जिनकी गति काफी तीव्र है, के कारण इन सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित ज्ञान के संग्रह अपने-अपने स्वतंत्र अस्तित्व में आ गए हैं। जैसे समाज से सम्बन्धित जानकारी, परिवर्तन, नवीन खोजों के ज्ञान के समूह को समाजशास्त्र कहा जाता है। इसी प्रकार जीवों से सम्बन्धित ज्ञानकोष को जीवविज्ञान नाम दिया जाता है। इसी प्रकार दूसरे शास्त्र जैसे अर्थ-शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि। इस विषय में विशेष विचारणीय बात यह है कि जिन क्षेत्रों में कार्य और कारण का सम्बन्ध पूर्णरूपेण लागू होता है और प्रत्यक्ष रूप में देखने में आता है उस क्षेत्र के ज्ञान संग्रह को विज्ञान नाम दिया जाता है जैसे वनस्पति-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि। परन्तु जो क्षेत्र मानव स्वभाव से सम्बन्धित हैं अर्थात मानव स्वभाव के परिवर्तनशील होने के कारण जहां कार्य और कारण का सम्बन्ध लागू नहीं हो पाता, या प्रत्यक्ष रूप से उसी समय में देखने में नहीं आता और अनचाहे परिणाम देखने में आ जाते हैं, उन क्षेत्रों से सम्बन्धित ज्ञानसंग्रह को शास्त्र नाम दिया जाता है जैसे राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र आदि। इसी विषय में अन्य विचारणीय बात यह भी है कि जनता की रुचि उसी को पढ़ने और धारण करने में होती है जो वैज्ञानिक (Scientific) है। यही कारण है कि अपने हर सिद्धान्त में 100% सत्य सिद्ध होने के कारण आज विज्ञान मनुष्यों का अतिप्रिय बन गया है इसी की पढ़ाई को सर्वोपरि और पढ़ने वाले को समाज में अग्रगण्य स्थान प्राप्त होता है।

इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी दो प्रकार के ज्ञानसंग्रह मिलते हैं, एक हैं धार्मिक पुस्तकें (Holy books) जो हरेक धर्म में पाई जाती हैं जिन्हें शास्त्र (Scripture) भी कह देते हैं। जैसे श्रीमद् भगवद् गीता। इसके साथ-साथ अन्य भागवत, रामायण, महाभारत आदि। इन शास्त्रों का ज्ञान निश्चय ही मानव-(देहधारी) रचित है और इसमें कहीं भी कार्य और कारण का सम्बन्ध लागू नहीं होता। अर्थात् इनमें व्यक्ति, समाज, धर्म, ईश्वर के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह वैज्ञानिक तथ्यों (Scientific-Laws) की तरह सत्य सिद्ध नहीं होता। उदाहरणार्थ भक्तिमार्ग में जो गीता हमें मिलती है उसमें लिखा है कि जिस घर में गीता होगी उस घर में कलह, क्लेश, रोग, शोक आदि कुछ नहीं होगा। वास्तविकता यह है कि संसार की 50 से भी ऊपर भाषाओं में अनुवादित इस शास्त्र की प्रतियां लगभग सभी धार्मिक मनोवृत्ति वाले घरों में पाई जाती हैं फिर भी व्यक्तिगत और सामाजिक कलह, क्लेश बढ़ते ही जा रहे हैं। रोग, शोक में वृद्धि ही हो रही है। इसको देखकर आज का वैज्ञानिक बुद्धि का विचारशील प्राणी यह सोचने पर मजबूर हो गया है कि आखिर भी इन धार्मिक पुस्तकों की सत्यता कहां तक है? इनका व्यावहारिक औचित्य दैनिक जीवन में कितना है? जब रोजमर्रा की दिनचर्या में इनका कोई लाभ और महत्त्व ना पाकर इनसे विमुख हो गया है और धर्म तथा ईश्वर को मात्र कल्पना मानने लगा है।

परन्तु इसी क्षेत्र की अद्वितीय उपलब्धि है आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान जिसे दूसरे शब्दों में सहज ज्ञान और सहज राजयोग का नाम दिया जाता है। जहां 20 वीं शताब्दी भौतिक क्षेत्र में असंख्य उपलब्धियां लेकर आई है, वहां आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इसकी प्राप्तियां कम नहीं हैं और दिनों दिन विकासोन्मुख है। सन् 1937 में संसार के सबसे उच्च वैज्ञानिक (Scientist), सृष्टि रचायिता पिता परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा के मुखकमल से आध्यात्मिक क्षेत्र के उन गुह्य रहस्यों को खोला जो पूर्णतया वैज्ञानिक हैं, जिन पर कार्य कारण का सम्बन्ध लागू होता है, जहां अन्ध-विश्वास और व्यर्थ रीतियों को कोई स्थान नहीं है।

निराकार पिता परमात्मा प्रदत्त इस सहज ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग (आत्मा और परमात्मा के स्नेहासिक्त सम्बन्धों की अनुभूति) से शास्त्रों, धार्मिक क्रिया-कलापों की शौकीन, परमात्मा को पाने की इच्छुक परन्तु इनकी अप्राप्ति से उदासीन तथा नीरस आत्माओं में आशा की किरण आ गई। उनमें नवीन जागृति आई। आशावान हुई आत्माएं ज्ञान और योग की शिक्षा को स्वयं गहराई से अध्ययन, मनन चिन्तन, धारण करती गईं, जिसके आधार पर प्राप्तियों और जीवन परिवर्तन के अनुभवों को इसमें सम्मिलित करने लगीं। इसी

प्रकार आध्यात्मिकता की यह वैज्ञानिक परिभाषा और उपलब्धि प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होकर संसार के 50 देशों में फैल चुकी है।

इसकी सभी शिक्षाएं परिणामोत्पादक हैं। इस सम्बन्ध में किया गया कोई भी प्रयोग, यदि क्रियाविधि ठीक है, तो व्यर्थ नहीं जाता। उदाहरण के लिए रसायन विज्ञान का फार्मूला है:—

$$H_2+O=W$$

रसायन विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि प्रयोग की विधि यदि इस फार्मूले के अनुसार अपनाई जाए तो इन दो गैसों के मिश्रण से पानी की प्राप्ति होती है। यदि कोई प्रयोगशाला (Laboratory) में पानी का निर्माण नहीं कर पाता तो यह माना जाता है कि अवश्य ही साधनों या उसके प्रयोग में कोई त्रुटि रही है। इसी प्रकार सहज ज्ञान भी मानव की सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अनेक फार्मूले प्रस्तुत करता है जैसे मन की स्थिरता और शान्ति की अनुभूति के लिए यह सहज ज्ञान और सहज राजयोग सर्वप्रथम हमें आत्मा (शान्ति की इच्छुक) का वास्तविक परिचय फिर परमात्मा (शान्ति के सागर) की सही जानकारी देता है। इन दोनों के पारस्परिक सम्बंधों को नजदीक से अनुभव करने के लिए देह और देह की दुनिया को भूलने की शिक्षा देता है दूसरे शब्दों में:—

True Knowledge of soul and God + forget fulness of body and bodily world = perfect peace and stability of mind.

शान्ति की प्राप्ति और मन की एकाग्रता आज के युग की ज्वलंत समस्या बन गई है। हम जानते हैं जीते जी देह और देह की दुनिया से न दूर भागा जा सकता है न समाप्त किया जा सकता है और यदि इनकी समाप्ति या छोड़ने के बाद शान्ति मिली तो वह किस काम की? हमको शान्ति और स्थिरता इनके बीच में रहते हुए ही चाहिए। इसके लिए ऊपर बताये गए फार्मूले अनुसार पहले तो स्वयं को जानें, पिता परमात्मा को जानें और अपने स्वस्वरूप में टिककर आत्मा के लिए साधन प्रकृतिकृत शरीर, शरीर की दुनिया को भूल जायें। आत्मा की बुद्धि परिवर्तनशील प्रकृति से निकलकर अजर, अमर, शाश्वत, सर्वशक्तिवान परमपिता परमात्मा पर एकाग्रत हो जाएगी। इसी एकाग्रता से शक्ति और शान्ति की प्राप्ति होती है।

भौतिक प्रयोगशाला में जहां सभी कुछ स्थूल आंखों से या अन्य यन्त्रों से देखा जा सकता है, न्यूनता अधिकता का निरीक्षण किया जा सकता है वहां आध्यात्मिक क्षेत्र में बुद्धि रूपी प्रयोगशाला (Lab) अदृश्य है। इसमें संकल्पों की गति, प्रगति, प्रकृति को चैक करना होता है जो सूक्ष्म होने के कारण परिश्रमोत्पादक अवश्य है परन्तु अमोघ और शाश्वत है।

चरित्र उत्थान, सामाजिक मानवीय मूल्यों जैसे पवित्रता, भाईचारा, स्नेह, सहयोग, सहनशीलता, त्याग आदि की पुनर्स्थापना और अन्य समस्याएं जैसे विश्वशान्ति, मानव-संस्कार-परिवर्तन आदि के लिए भी सहज ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग सामयिक विधि प्रस्तुत करता है। धर्मशास्त्रों में अधिकतर यही लिखा मिलता है कि हमें विकारों से बचना चाहिए, सत्य मार्ग पर चलना चाहिए, झूठ, पाप, चोरी, ईर्ष्या द्वेष से दूर रहना चाहिए, समदृष्टि रखनी चाहिए, परमात्मा को याद करना चाहिए, सात्विक भोजन-पान करना चाहिए आदि-आदि।

आध्यात्मिक ज्ञान, विज्ञान की शक्ति हमारी चाहिए-चाहिए को समाप्त करके हमें उसका स्वरूप बना देती है, उन सभी कारणों के निवारण की शक्ति हमें प्रदान करता है जो इन कमज़ोरियों को आत्मा में लाने के निमित्त बनते हैं। ईश्वरीय ज्ञान हमें बताता है कि 'हम इस शरीर को लेने से पहले भी थे, बाद में भी रहेंगे।' अतः वर्तमान देह के आधार पर जिन सम्बंधियों में हम मेरापन रखे हुए हैं वही मेरे नहीं हैं वरन् कालचक्र के साथ घूमती आत्मा के विभिन्न समयावधि में सभी आत्माएं कोई न कोई सम्बंध में रह चुकी हैं। अतः यह ज्ञान पारिवारिक मेरेपन के साथ-साथ वैश्विक मेरेपन को पैदा करता है और "वसुधैव कुटुम्बकम्" होना चाहिए के स्थान पर हमें अनुभव कराता है कि वसुधा है ही परिवार हम सभी एक पिता परमात्मा के बच्चे आपस में भाई-भाई हैं।

ईश्वरीय ज्ञान हमें अनुभव कराता है कि आत्मा जब पहले-पहले इस सृष्टि पर आई तो खाली हाथ नहीं वरन् सुख, शान्ति, प्रेम, पवित्रता, शक्ति आदि खजानों से भरपूर होकर आती है। परन्तु कालान्तर में प्रकृति के आकर्षण में फंसकर अपनी इस मूल अमानत को भुला देती है और दुख, अशान्ति, नफरत, आदि बुराईयों में फंसती है। जैसे कोई बच्चा नासमझ होने के कारण घर से लाए हुए सुन्दर खिलौने को फैंककर गली की धूल, कंकड़ से खेलने लगता है, गन्दा भी हो जाता है और चोट भी खा लेता है। इतना जानने के बाद आत्मा यह नहीं कहती कि सुख होना चाहिए, शान्ति होनी चाहिए, प्रेम होना चाहिए बल्कि इनको अपनी मूल अमानत समझकर इनको किसी भी परिस्थिति में समाप्त ही नहीं होने देती।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान की शक्ति हमारी सदियों की तमन्ना जैसे आत्मिक अनुभूति, परमात्मा की प्राप्ति, विश्व बन्धुत्व, घर गृहस्थ का स्वर्ग बनना आदि को पूरा करती है। इसीलिए यह दिनोंदिन लोकप्रियता को पा रहा है, इसको धारण करने वाले समाज और विश्व में सम्मानित हो रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब इसकी शक्ति से प्राप्ति-स्वरूप बना मानव देवपद को प्राप्त करेगा और धरती स्वर्ग बन जायेगी। □

न दुःख दो, न दुःख लो

कर्मों का हिसाब-किताब बड़ा ही अटल है। इसलिए, मनुष्य को कोई छोटा-मोटा विकर्म करने से भी बच के रहना चाहिए, क्योंकि जितना सूक्ष्म कर्म होता है उतनी सूक्ष्म उसकी भोगना (दण्ड) भी अवश्य ही भोगनी पड़ती है। असावधानी से भी अपने विकर्म द्वारा, अन्य किसी को दुःख देने के बदले में दुःख पाना पड़ता है। इसलिए स्वयं को सुखदाता परमात्मा की वंशावली निश्चय करके स्वयं अपने मन में सुखी होकर अन्य सभी को भी सुखी करने की सेवा में तत्पर रहते हुए स्थूल (शारीरिक) और सूक्ष्म (मानसिक) विकर्मों से सदा सावधान रहो। न किसी को दुःख दो और न ही किसी से दुःख लो।

अगर कोई मनुष्य, अन्य किसी को दुःखी देख कर स्वयं भी उस प्रवाह (प्रभाव) में आ जाता है और फिर दुःख का हाल सुनाकर अन्य किसी को दुःखी करता है, तो उस मनुष्य की अवस्था को कोई ज्ञानमय अवस्था नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो ज्ञानी मनुष्य है वह सदा साक्षी, शान्त-चित्त और हर्षित-मुख होकर स्वयं भी अतीन्द्रिय सुख में रमण करता है और अपने ज्ञान के बल से दूसरों के दुःखों को भी दग्ध कर देता है। अपना तथा लोक-कल्याण का ख्याल रखते हुए उसके मुख पर मुरझाहट अथवा चित्त में ग्लानि नहीं हो सकती। वह समझता है कि "मेरे दुःख का प्रवाह (प्रभाव) अथवा चिह्न देखकर दूसरों का भी मेरे प्रति संकल्प चलेगा। उनका मेरी तरफ ध्यान खिच जावेगा और वे मुझे ही खुश करने के लिए जो स्थूल-सूक्ष्म पुरुषार्थ करने लग पड़ेंगे तो उसका बोझ भी मुझ पर चढ़ जायेगा। और इस प्रकार, मेरे ही कारण उनका भी समय व्यर्थ होगा," इसलिए, अब आप जीवन में ज्ञान की धारणा करके दुःख के काँटों को हमेशा के लिए निकाल दो!

दुःखियों से बुद्धियोग लगाना भी ज्ञान के विरुद्ध है

स्वयं दुःख से छूटने का और दूसरों को सुखी करने का पुरुषार्थ बहुत ही महीन पुरुषार्थ है। शान्तिस्वरूप, आनन्दस्वरूप परमात्मा के साथ बुद्धि योग की सूक्ष्म तारें जोड़ने से आप शान्ति और आनन्द का प्रवाह पकड़ सकते हैं, वैसे ही अगर मनुष्य का सूक्ष्म बुद्धि योग किसी दुःखी मनुष्य के साथ जुटा होगा तो उसे भी दुःखी व्यक्ति के दुःख का ताप पहुँचेगा अवश्य। और, अगर कोई मनुष्य स्वयं दुःखी होगा तो उसके सूक्ष्म (मानसिक) सम्बन्ध के कारण उसके सम्बन्धियों को भी दुःख की सूक्ष्म भासना मिलेगी अवश्य। इस प्रकार दुःख का लेना और देना चलता रहेगा तो मनुष्य सदा-प्रफुल्लित अवस्था को कदापि प्राप्त नहीं कर सकेगा। आप जानते हैं कि इस समय सभी मनुष्य दुःखी हैं। इसलिए, किसी भी मनुष्य से जरा भी मन का सम्बन्ध होगा तो स्वयं सुखी होने और दूसरों को सुखी करने के पुरुषार्थ में विघ्न पड़ता अवश्य रहेगा। तब ज्ञान की खुमारी चढ़न सकेगी।

इसलिए, भगवान् कहते हैं कि अब इस गुह्य धारणा को समझकर न किसी को दुःख दो और न किसी का दुःख लो! **क्योंकि यदि इस आज्ञा का पालन न किया तो दुःख का कर्म-बन्धन अथवा हिसाब-किताब चलता ही रहेगा। परन्तु अब तो समय भी अधिक नहीं रहा है। और, सम्पूर्ण सुख प्राप्त करने का यह सुहावना समय दिन-प्रतिदिन क्षण-क्षण, पल-पल करके गुज़रता जाता है; इसलिए एक-एक क्षण में सुख लेते और देते ही रहो क्योंकि आप सुखदाता भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़कर सम्पूर्ण सुख प्राप्त करने वाले हो।** जब देह के सब सम्बन्धियों, अज्ञानियों अथवा दुखी व्यक्तियों से आन्तरिक सम्बन्ध तोड़कर अपने मन और बुद्धि का सम्बन्ध स्थूल और सूक्ष्मरीति सुखसागर भगवान् से जुटाएंगे तो आपके जीवन में दुःख का लेश भी नहीं रह सकेगा।

दूसरों को दुखी करने का संकल्प करने वाला दुःखका अनुभव करता है

किसी को दुःख पहुंचाने का अगर सूक्ष्म भी संकल्प आपके मन में आये तो मानो कि आप ज्ञान की धारणा में निष्फल और विफल (फेल) हो गये हैं, क्योंकि ज्ञानी तो कोई हानिकारक कार्य नहीं करता है जबकि दूसरे को दुःख पहुँचाने का सूक्ष्म संकल्प उठाने वाले मनुष्य के अपने ही मन में पहले दुःख का अनुभव होता है और बाद में भी दुःख देने के कारण, उसे दुःख ही भोगना पड़ता है तो आप ही बताओ कि क्या कोई ज्ञानी मनुष्य कभी भी दुःखी करके दुःखी होने की बात करना चाहेगा? क्या वह अपने दुःख के चिन्हों अथवा अनुभव से दूसरों को दुःखी करने का संकल्प भी करेगा?

देवताओं के समान मीठे बनो!

देवताओं की मूरत, सूरत (मुखाकृति) और सीरत (आचरण) तो ऐसी होती है कि जिससे सब खुश हो जायें। देवता तो सबको वरदान देनेवाले होते हैं। जब किसी भक्त को किसी देवता (जैसे कि श्रीकृष्ण) का साक्षात्कार होता है तो तुरन्त ही भक्त का मस्तक झुक जाता है, क्योंकि देवताओं का मन, वचन, कर्म सभी सुख ही से भरपूर होते हैं। इसलिए, अब अपने स्वरूप को पहिचान कर, फिर देवताओं के समान मीठे बन जाइये। सबको सुख देने वाले हो जाइये। आपसे कोई भी व्यक्ति अप्रसन्न होना नहीं चाहिए। शेष पृष्ट २४ पर

निर्विकल्प अवस्था

विकर्म विनाश करने के लिए सहज युक्ति है निर्विकल्प अवस्था को धारण करना, क्योंकि कर्मातीत परमात्मा की और अपनी निसंकल्पस्थिति (कर्मातीत स्थिति) की याद में रहने से ही, वर्तमान काल में भीऐसी अवस्था हो जाती है, जिसमें कि मनुष्य के पिछले जन्म-जन्मान्तर केसंस्कार पलटते जाते हैं, दिव्य गुण सहज ही धारण होते जाते हैं और पिछला हिसाब-किताब चुकता होता जाता है।

वास्तव में, मनुष्य निसंकल्प और निर्विकल्प भी उतना ही बन सकता है जितना-जितना कि उसके विकर्म विनाश होते जाते हैं और संस्कार पलटते जाते हैं, क्योंकि संस्कार अथवा विकर्म ही तो मनुष्य के मन को दूसरी तरफ़ खेंच जाते हैं। तो कर्मातीत बनने के लिए निस्संकल्प बनना,निसंकल्प बनने के लिए कर्मातीत अवस्था को याद करना और याद करने के लिए, निर्विकल्प परमात्मा का, निस्संकल्पता के धाम(निर्वाण धाम) का और उनकी निर्विकल्प रचना अर्थात् वैकुण्ठ का ज्ञान होना ज़रूरी है। ज्ञान के बिना निसंकल्प और निर्विकल्प अवस्था हो नहीं सकती और निसंकल्पता तथा निर्विकल्पता ही तो ज्ञान लक्षण हैं अथवा लक्ष्य प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ है। परन्तु यह पुरुषार्थ परमात्मा के सिवा अन्य कोई भी सिखा नहीं सकता। जब सम्पूर्ण कर्मातीत परमात्मा ही निसंकल्पता के धाम अर्थात् परमधाम से आकर सबको निर्वाण धाम में ले जाने का पुरुषार्थ कराते हैं तब ही मनुष्य निर्विकल्पता का वास्तविक अर्थ समझ सकता है और यथार्थ रीति निर्विकल्प हो सकता है।

निस्संकल्पता की अवस्था बड़ी ही मीठी है, क्योंकि निस्संकल्प मनुष्य यहां बसते भी नहीं बसता, यहाँ के व्यवहार में बर्तते हुए भी उससे उपराम होता है, कारण कि उसका बुद्धि योग तो निसंकल्पता के धाम अर्थात् निर्वाणधाम से और निर्विकल्पना के धाम अर्थात वैकुण्ठ से लगा होता है। निस्संकल्प हो ही वह सकता है जिसकी एक आँख में निर्वाण और एक में जीवनमुक्ति धाम बसता हो, अर्थात् जो इस दुनिया को देखते हुए भी न देखता हो, यहाँ चलते-फिरते भी अपनी मंजिल की याद में रहता हो।

निस्संकल्प आत्मा का अनुभव भी लौकिक न होकर अलौकिक ही होता है क्योंकि वह परलोक अथवा अलोक (वैकुण्ठ) में बसता है। **उसे ऐसा प्रवाह आता है जैसे कि वह अपने उस दूर धाम से, उस प्रिय देश से, थोड़े ही समय के लिए इस पुराने देश में आया है और उसे तो अब यहाँ से शीघ्र ही वापिस लौट भी जाना है। तो इस पुराने देश की वह किस वस्तु से बुद्धियोग लगावे? अपनी वैकुण्ठ की राजधानी को याद करते हुए उसे इस मृत्युलोक के सांसारिक लोगों का विषयी 'सुख' तो सुहाता ही नहीं, यहाँ के थोथे मनोरञ्जन तो भाते ही नहीं, क्योंकि उसका दिल तो किसी और तरफ़ लगा होता है। इसलिए, यहाँ सब कुछ करते हुए भी वह इन सबसे न्यारा रहता है और अपने कर्मों का फल यहां न पाकर वापिस सुखधाम (स्वर्ग) में जाकर पाता है।** तो जबकि इस दुनिया से उसका दिल ही हटकर पिता परमात्मा से, और उनके अव्यक्तधाम (परलोक) से तथा उनकी सुखमय रचना अर्थात् वैकुण्ठधाम से लग गया है तो उसे विकल्प अथवा फ़ाल्तू संकल्प आ ही कैसे सकता है? क्योंकि वह अब भली-भाँति समझता है कि निसंकल्पता ही के रास्ते से वह वापिस अपने निर्वाणधाम को, तथा निर्विकल्पता ही के रास्ते से अपने जीवन्मुक्ति-धाम (स्वर्ग) को लौटकर अपनी पूर्ण प्रारब्ध प्राप्त कर सकता है।

बम्बई (सान्ताक्रूज)—ब्र.कु. मीरा बहन, स्वामी सच्चिदानंद जी से ज्ञान वार्तालाप कर रही हैं। स्वामी जी आध्यात्मिक चित्रों को बड़े ध्यान से देख रहे हैं।

पृष्ठ २३ का शेष

हाँ, अपनी ही खराब दृष्टि अथवा तमोगुणी वृत्ति के कारण भी कोई आपके प्रति ग़लत (मिथ्या) धारणा करके दुखी हो पड़ा करेंगे। भले ही इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है परन्तु फिर भी अपने ज्ञानबल से उन अज्ञानी मनुष्यों की भी दृष्टि को पलटने का प्रयत्न तो करना चाहिए।

सुखधाम जाने का मार्ग

अब तो आप सुखदाता भगवान् द्वारा सुखधाम जा रहे हो। अब दुःखके दिन पूरे हुए। अब जितने-जितने कदम अथवा श्वास सुख में गुज़रेंगे उतना ही आप मंज़िल (लक्ष्य) के समीप पहुंचते जाओगे। इसलिए, उस सुखधाम की याद में रहते हुए, खुशी-खुशी में विघ्नों को टालते हुए, दूसरों को भी सुखधाम का परिचय देकर सुखी करते रहो तो सुखधाम में अवश्य ही पहुंच जाओगे।

राम का धनुष-बाण

ब्र.कु. ओम प्रकाश, (बांदा)

बाल्मीकि रामायण के कलकत्ता से छपे एक हिन्दी संस्करण के 64वें पृष्ठ पर लिखा है–जब विश्वमित्र जी–महाराजा दशरथ से उनके दोनों प्रिय पुत्रों राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षार्थ ले जा रहे थे, तो रास्ते में वे उन्हें ऋषियों-मुनियों के आश्रम में ले गये। सभी ऋषियों ने तप से प्राप्त अस्त्र-शस्त्र श्रीराम व इनके अनुज लक्ष्मण को प्रदान किये। अनेक आश्रमों व अनेक ऋषियों से अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने के बाद–जब राम आगे बढ़े तो उन्होंने संवाद किया, "ऐ अस्त्रों-शस्त्रो,तुम जाकर मेरी मनसा में बैठ जाओ और जब आवश्यकता पड़े, तब रक्षार्थ प्रगट हो जाना।"

मैं बहुत काल से इसका उत्तर नहीं खोज पा रहा था कि आखिर ऐसे कौन-से अस्त्र-शस्त्र ऋषियों ने राम को प्रदान किये, जिन्हें राम ने शरीर में न धारण कर मन में धारण किया? इसका उत्तर वास्तव में मुझे मिला "प्रजापिता ब्रहमाकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय" में आकर, उस श्रेष्ठ ज्ञान के द्वारा जो राम के भी ईश्वर (रामेश्वर) परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रहमा के माध्यम से प्रगट किया।इस ज्ञान से मुझे यह समझ मिली कि राम-लक्ष्मण अथवा अर्जुन के पास जो धनुष-बाण दिखाये जाते हैं–अथवा उन्हें जो ऋषियों-मुनियों ने अस्त्र-शस्त्र दिये वे कोई स्थूल अस्त्र-शस्त्र नहीं थे वरन् वे ज्ञान के अस्त्र-शस्त्र थे।तभी तो राम ने कहा–ऐ अस्त्रो-शस्त्रो तुम जाकर मेरी मनसा में बैठ जाओ और जब आवश्यकता पड़े तब प्रगट हो जाना।

तो आओ प्यारे बहनो-भाइयो, हम समझें कि राम के पास कौन-सा धनुष था या कि लक्ष्मण व अर्जुन के पास कौन-सा धनुष बाण थे? शिवबाबा कहते–बच्चो, वह धनुष तो तुम सभी मनुष्यों के पास हैं। देखो ध्यान से और मिलाओ अपने होठों की शक्ल, क्या वह धनुष से नहीं मिलती?"अब आगे देखें धनुष के प्रयोग से क्या करते थे राम व अर्जुन–शब्दभेदी बाण ही तो चलाते थे न? तो हम सभी वाणी से शब्द रूपी बाण ही तो निकालते हैं। कहते हैं कि उनके बाण अपना कार्य कर वापस लौट आते थे। अब देखिए जब आप-हम कोई बात कहते भी हैं–तो वह अपने पास बनी ही रहती है। शब्दों रूपी बाण की महिमा तो कलियुग में इस प्रकार से की गई है–

जो बात से नहीं मरा वह गोली से क्या मरेगा? अथवा कहावत भी है–"बातई हाथी पाइये; बातई हाथी पाँव।" यानी शब्द रूपी बाण ठीक से चलाए तो हाथी इनाम में प्राप्त करें–गलत चलाएं तो मृत्यु दंड तक के भागी बनें।

अमेरिका के महान् राष्ट्रपति इब्राहिम लिंकन एक श्रेष्ठ व्यक्ति थे किन्तु उन द्वारा पूर्व में की गई आलोचना के कारण–उनकी वाणी से दुःखित व्यक्ति ने थियेटर में उन्हें गोली मार दी। अब कहते हैं कि राम व अर्जुन आदि के पास अक्षय 'तरकश' थी। अब विचार कीजिए, विचार कहां से आते हैं आत्मा से। तो वह आत्मा ही तो 'अक्षय तरकश' है। सर्वविदित है कि आत्मा का क्षय नहीं होता वह अजर-अमर-अविनाशी है और वही तो मुख रूपी धनुष के माध्यम से वाणी द्वारा बाण फैंकने का कार्य करती है।

बाण की आप इस रूप में भी वापसी समझ सकते हैं कि आपने कोई बात कही–वह किसी को बुरी लगी–तो झट आपने माफी मांग ली।

कहने का आशय यह है कि हमें अपनी वाणी का इस प्रकार से प्रयोग करना है जैसा कि शिवबाबा ने शिक्षा दी है–"न दुःख दो; न दुःख लो; और सुख दो–तो सुख लो।"

शिव भगवान् उवाच–***'निंदा, अनुमान, कटाक्ष–दुःख देना–महापाप है।"***

महान् संत-कबीरदास जी कहते हैं–वाणी ऐसी बोलिये मन का आपा खोए, औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय।

तो हम सबको निश्चय करना है कि हम–काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, देहाभिमान व आलस्य रूपी दुश्मनों को मार भगायेंगे व पूर्ण अहिंसा का व्रत धारण कर सर्व का सहयोग प्राप्त कर, नवीन सतयुगी दुनिया की स्थापना में अपना अभूतपूर्व योगदान देंगे। □

जीवन में आत्मिक शक्ति..... पृष्ठ ९ का शेष

आप देखेंगे कि सरकार की सारी शक्ति भी देश अथवा संसार में नियम और अनुशासन (Law and Order) को स्थापित अथवा कायम नहीं रख सकती। परन्तु जब इस सृष्टि में परमात्मा द्वारा वास्तविक धर्म की स्थापना हो जाती है तब मनुष्यों की तो क्या बात, जड़ तत्त्व भी उत्पात नहीं मचायेंगे। अतः यदि मनुष्य सम्पूर्ण सुख और शान्ति चाहता है तो उसे चाहिए कि वह ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वरीय योग, ईश्वरीय पवित्रता और ईश्वर द्वारा बताये गए धर्म से जीवन में आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करे। □

मानसिक आवेग आपके साथ क्या कर सकते हैं?

क्या आप जानते हैं कि सारे दिन में मन में प्रवाहित होने वाले विचारों का शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है? कदाचित् आपको आश्चर्य होगा कि बहुत-सी शारीरिक बीमारियों का मूल कारण मानसिक तनाव एवं निषेधात्मक संकल्प (Negative Thoughts) होते हैं। निषेधात्मक संकल्प शारीरिक स्वास्थ्य को काफी हद तक हानि पहुँचाते हैं। इस बात की यथार्थता को जानने के लिए मानसिक आवेगों का शारीरिक पद्धतियों की आंतरिक रचना एवं कार्यवाही पर जो असर होता है उसे समझना रोचक होगा।

★ तांत्रिक-अंतःस्राव-प्रणाली (Neuro-Endocrine System)

शरीर में जो अन्तःस्राव ग्रंथियां (Endocrine Glands) हैं, उनका स्राव सीधे ही रक्त में मिल जाता है और विभिन्न अंगों की कार्यवाही में सहायक होता है। इन ग्रंथियों का नियंत्रण पिट्यूटरी (Pituitory) नामक ग्रंथि द्वारा होता है, जो सर्व अन्तःस्राव ग्रंथियों का नियंत्रण करती है। शरीर विज्ञानियों ने यह भी सिद्ध कर लिया है कि इन ग्रंथियों का नियंत्रण भी मस्तिष्क (Brain) के एक भाग द्वारा होता है जिसे अधश्चेतक (Hypothalamus) कहते हैं।

अधश्चेतक ज्यादातर पिट्यूटरी के हरेक अंतःस्राव का नियंत्रण कर भिन्न-भिन्न स्राव तैयार करता है जिसे वृद्धिकारी अंश (Releasing Factor) और न्यूनताकारी अंश (Inhibiting Factor) कहते हैं। हमारे विचारों का अधश्चेतक पर गहरा असर होता है (आकृति-1)। अगर हमारे कुत्सित विचारों के कारण अधश्चेतक ठीक काम नहीं कर पाता तो उसका परिणाम अन्य अन्तःस्राव ग्रंथियों पर होता है अर्थात् इन ग्रंथियों की स्राव-निर्माण करने की क्षमता कम-ज़्यादा होती है और अन्तःस्राव के परिणाम का परिवर्तन हमारे अंगों को हानि पहुंचाता है जिसके फलस्वरूप हम भिन्न-भिन्न रोगों के शिकार बनते हैं।

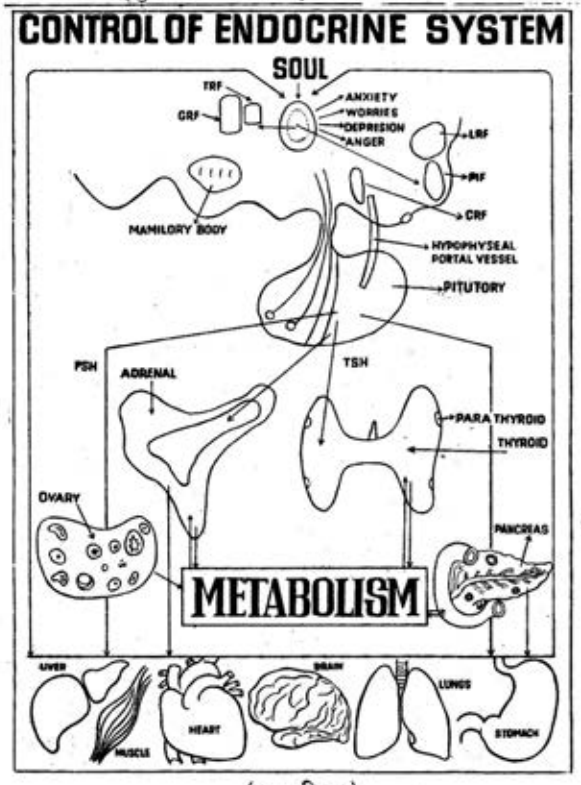

(आकृति 1)

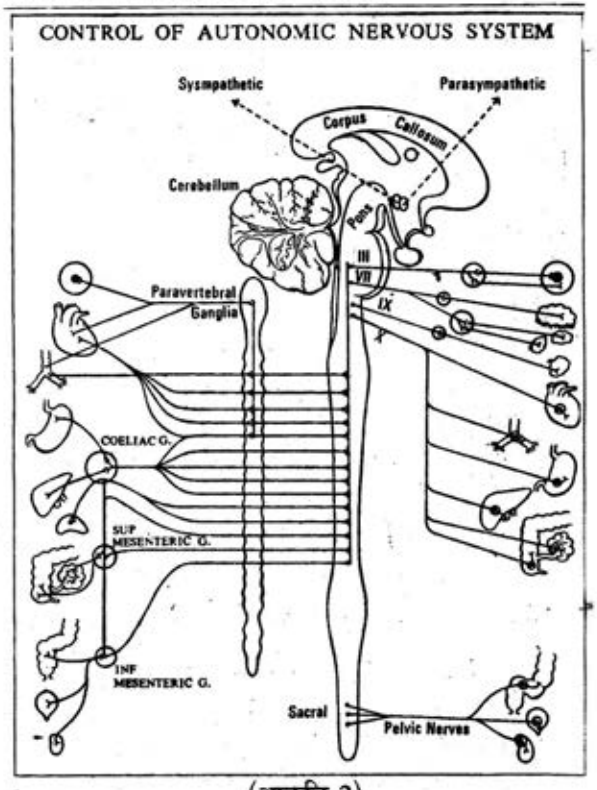

(आकृति 2)

★ स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र-प्रणाली
(Autonomic Nervovs System)

यह भी माना गया है कि डायरिया से लेकर हार्टअटेक तक सभी बीमारियां अनुकम्पी (Systems) के अनियमित कार्य के कारण हो सकती हैं(आकृति-2)। उन दो पद्धतियों पर हमारे मन के आवेगों का गहरा असर पड़ता है जिसके कारण अन्य अनेक शारीरिक रोग निर्माण होते हैं।

साधारणतः दमा, अल्सर, ब्लडप्रेशर, नर्वस, डायेरिया, आदि को मानसिक-शारीरिक (Phychosomatic) बीमारियां माना जाता है। परन्तु अन्य कई रोग क्रोध, द्वेष, घृणा आदि मानसिक आवेगों के कारण होते हैं।

★ तंत्रिका-प्रणाली
(Nervous System)

अधश्चेतक (Hypothalamus) के अलावा जालीय संक्रियण प्रणाली (Reticular Activating System) जो हमें जाग्रत रहकर कार्य करने में काफी मदद करती हैं, इस प्रणाली पर भी हमारे सारे दिन के विचारों का सीधा ही असर होता है।

★ हृदयवाहिका प्रणाली
(Cardio Vascular System)

मस्तिष्क की तरह हृदय भी हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण एवं सुकोमल भाग है। मानसिक असंतुलन के कारण हृदय पर कार्य का दबाव बढ़ जाता है और धीरे-धीरे हृदय कमजोर होता जाता है। मानसिक तनाव के कारण रक्तदाब (High Blood Pressure) बढ़ जाता है और हृतूशूल (Angina-Pectoris) जैसी दर्दनाक बीमारी हो सकती है। दुःखद समाचार सुनते ही हृदय अचानक कार्य करते-करते रुक जाने के उदाहरण आपने अवश्य देखे वा सुने होंगे। वर्तमान समय हमारा मन सागर की तरंगों के बीच बहती लकड़ी की तरह है, जिसे तरंगों की गति की भांति अपनी दिशा बदल लेनी पड़ती है और इसी कारण हरेक दुःखदायी घटना का हमारे शारीरिक अंगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

★ श्वसन प्रणाली
(Respiratory System)

चिड़चिड़ापन, क्रोध एवं मानसिक उत्तेजनायें हमारी श्वासोच्छ्वास की गति को बढ़ा देते हैं। परिणामस्वरूप रक्त में कार्बन-डायोक्साईड (CO_2) की मात्रा कम हो जाती है और अलकली (Alkali) का प्रमाण बढ़ जाता है। यह अधिक अलकली युक्त रक्त हमारे विभिन्न अंगों को नुकसान पहुंचाता है। निराशामय विचार कंठावरोध का संवेदन उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार दमा (Asthema) जैसी बीमारी के शिकार बन जाते हैं।

★ पाचक प्रणाली
(Digestive System)

आपने यह अनुभव किया होगा कि अगर हम क्रोध, भय, निराशा आदि के वश होकर भोजन करते हैं तो हम आवश्यकता अनुसार भोजन नहीं कर पाते। इसका वैज्ञानिक कारण यह होता है कि ऐसे निषेधात्मक संकल्पों की स्थिति में लार (Sativa) का स्राव कम हो जाता है और मुंह में सूखापन महसूस होता है। दूसरा इसके अलावा पाचक प्रणाली के अन्य स्राव भी आवश्यकता अनुसार स्रावित नहीं होते और हम एसिडिटी (Acidity), पेप्टिक अल्सर (Peptic Ulcer), आल्सरेटिव कोलाइटिस (Ulcerative Colitis) आदि रोगों को निमंत्रण देते हैं।

★ चयापचय
(Metabolism)

हम जो अन्न सेवन करते हैं उसका शारीरिक शक्ति में रूपान्तर होता है तथा वह शरीर के अन्य आंतरिक कार्य के लिए उपयोग में आता है। इसी प्रक्रिया को चयापचय (Metabolim) कहा जाता है। ऊपरनिर्दिष्ट हरेक अंतःस्राव (Harmone) चयापचय की प्रक्रिया को प्रभावित करता है (आकृति -1) अंतःस्राव का परिणाम हलचलाने से अन्न (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटस, यह भी शारीरिक बीमारियों के निमंत्रण का कारण बनता है।

★ संक्रामक रोग
(Infective Diseases)

शरीर विज्ञानियों (Physiologists) ने यह भी सिद्ध किया है कि संक्रामक रोगों (Infective Diseases) का औषधोपचार से निवारण करने में मानसिक आवेगों का असंतुलन अधिक समय लगाता है। क्षय (Tuberculosis) एवं इन्फ्ल्युएन्झा (Influenza) जैसे रोगों के इलाज में वह विलंब का कारण बनता है। मानसिक आवेगों का केन्सर (Cancer) जैसी खतरनाक बीमारी पर क्या प्रभाव होता है, इस विषय में आजकल अनुसंधान-कार्य चल रहा है।

इस संक्षिप्त वर्णन से आपको यह मानने में कठिनाई नहीं होगी कि हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक-संतुलन की केवल अनुकूल परिस्थिति में ही नहीं बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी बहुत आवश्यकता है।

—डा. गिरीश पटेल,
मनोरोग चिकित्सक, बम्बई

कगवाल (जानीपुरा, जम्मू) में आयोजित आध्यात्मिक प्रदर्शनी के उद्घाटन के पश्चात् ब्र.कु. सरिता बहन महंत नरसिंहदास जी को सर्वप्रिय परमात्मा 'शिव' का परिचय दे रही हैं।

सीमलेड़ा (गोधरा) में आयोजित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम समारोह में भाता बदीया भाई, विधानसभा सदस्य उद्बोधन कर रहे हैं।

गांधीनगर में आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन भाता एम.वी. मोदी, कलेक्टर टेप काटकर कर रहे हैं। साथ में खड़े हैं गांधीनगर व्यापारी संगठन के प्रमुख भाता नटुभाई व्यास तथा अन्य भाई-बहनें।

भिलाई स्वामी लोकेश्वरानद जी, सांस्कृतिक सचिव, रामकृष्ण सेवामंडल को ब्रह्माकुमारी उषा बहन ईश्वरीय सौगात भेंट कर रही हैं।

नारनौल में आयोजित 'जीवन दर्शन सुख-शान्ति प्रदर्शनी' का उद्घाटन भाता राव लक्ष्मीनारायण जी, परिवहन मंत्री, हरियाणा ने किया। चित्र में उनके साथ ब्र.कु. उषा बहन तथा अन्य दिखाई दे रहे हैं।

दिल्ली – जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दरियागंज में आयोजित राजयोग-शिक्षा कार्यक्रम में ब्रह्माकुमारी विमला बहन भाता बी.डी. जैन, प्रधानाचार्य को सर्व आत्माओं के परमप्रिय परमपिता 'शिव' का चित्र भेंट कर रही हैं।

लघु नाटक

'निर्बलता हटाओ'

ले.-बी.के. रामप्रसाद, बैतूल (म.प्र.)

पात्रः– ब्र.कु. श्याम और उसके दो मित्र (ज्ञान और योग)

कलियुगी पतित दुनिया में किसी तरह साधारण जीवन व्यतीत करता हुआ एक नबयुवक, जो अपने को इस दुनिया में अकेला महसूस कर रहा था, ने मित्र बनाना चाहा लेकिन इस मायावी दुनिया में उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के अलावा कोई मित्र नहीं मिला। आखिर उसने उन्हीं से दोस्ती कर ली। परन्तु इन मित्रों ने मिलकर उसे कंगाल बना दिया। उसके पास सुख, शान्ति, ज्ञान-धन आदि जो भी था सब-कुछ छीन लिया। ऐसी हालत में परमपिता शिव की कृपा से उसे दो सच्चे मित्र मिले। वे कोई और नहीं, वे ज्ञान और योग ही थे जिन्होंने उस शक्तिहीन दुःखी युवक को निर्बलता से मुक्त कर समर्थ व शक्तिशाली बना दिया।"तो आइए इस नाटक द्वारा उस रहस्य को जानने का प्रयत्न करें–

ज्ञान और योग का प्रवेश

ज्ञान–श्याम भाई, ऐ श्याम भाई! (धीमे स्वर में आवाज लगाते हैं)

योग–लगता है श्याम भाई आराम कर रहे हैं,चलो,बाद में आ जायेंगे। (इतने में ही श्याम भाई बाहर आकर देखते हैं तो ज्ञान, योग दोनों ही मित्र सामने खड़े हैं। वह उनका स्वागत करता है)

श्याम–आइये भाई, आइये, बैठिये।

ज्ञान–बैठना क्या भाई, चलिये। समय तो कम है। अरे हां, श्याम भाई चलने के विषय में आपने क्या सोचा?

श्याम–सोचना क्या था भाई, मेरी बुद्धि तो अभी तक निर्णय नहीं कर पाई कि मैं तुम्हारे साथ चल सकूंगा या नहीं!

योग–इसका मतलब आप अभी तक तैयार नहीं हुए? देखो, अभी आराम ही कर रहे थे जबकि चलना भी तो दूर है।

श्याम–यही तो बात है भाई। चलना भी बहुत दूर है, वह भी ऊंच से ऊंच जगह जहां पहुंचने के लिए काफी प्रयास करने पड़ते हैं और मुझ में इतनी शक्ति अब नहीं रही। मुझे आपके साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं। पर मैं स्वयं अपने आपको असमर्थ महसूस कर रहा हूं।

ज्ञान–अरे भाई, ये भी कोई बात हुई। आप समर्थ रहते हुए भी असमर्थता प्रगट कर रहे हैं। यही निर्बलता आपके आत्मविश्वास को कम कर हीनभावना पैदा कर रही है।

योग–बस यही आप में कमी है। भाई, उमंग-उत्साह और आत्मविश्वास तो आप में है लेकिन साथ-साथ व्यर्थ संकल्प की कमजोरी (क्या होगा? कैसे होगा? होगा कि नहीं होगा? आदि) ने आपको कमजोर बना दिया है।आखिर ऐसा क्यों?

श्याम–क्या बताऊं भाई, ये सब उन पांच विकारों की मित्रता का ही परिणाम है। पर मैं करता भी क्या? जब मैंने इस दुनिया में जन्म लिया तब अकेला आया और अकेले रहकर भी खुशी-खुशी बचपन बिताया लेकिन जब थोड़ा बड़ा हुआ तो अपने को अकेला महसूस किया। फिर तो ये अकेलापन खलने लगा। इससे बचने के लिए चल पड़ा किसी को मित्र बनाने परन्तु उनमें सबसे पहले मुझे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मिले और एक के बाद एक ऐसे मित्र बन गये जैसे जन्म-जन्म के साथी हों। इनकी दोस्ती पाकर कुछ समय तो खुशी रही क्योंकि ये हर तरह से मुझे सहयोग देते रहे किन्तु धीरे-धीरे इन सभी ने मिलकर सुख-शान्ति, संतोष यहां तक आत्मबल भी मुझसे छीन लिया और इस प्रकार कमजोर बना दिया। यही तो मूल कारण है।

ज्ञान–खैर, जो कुछ हुआ उसे तुम भूल जाओ। यह सब होना ही था। अब हम आपको सर्वशक्तिवान परमात्मा से सर्वगुण, सर्वशक्तियों की प्राप्ति करा सकते हैं। पर आप हिम्मत तो रखो, मदद परमात्मा देंगे ही। इस प्रकार अपनी कमजोरी के ही गीत गाते रहोगे तो निश्चित ही कमजोरी आ जायेगी। फिर आपको यह भी मालूम है कि एक कमजोरी कई विशेषताओं को समाप्त कर देती है।

श्याम–मुझे आपकी बात व परमात्मा पर पूर्ण निश्चय है पर संकल्प में दृढ़ता नहीं। ये ही मेरी कमजोरी ही नहीं है बल्कि भूल कहना चाहिये।

ज्ञान–इतना सब-कुछ आपने समझा फिर क्यों व्यर्थ संकल्प बुद्धि में लाते हो? जितनी बुद्धि में स्वच्छता होगी उतनी ही शक्ति आयेगी; पर आपकी स्थिति कमजोर इसलिए हो गई है कि आप भूल बैठे हैं कि मैं आत्मा सर्वशक्तिवान पिता परमात्मा की संतान हूं।

श्याम—हां भाई, सचमुच मैं वास्तविक स्वरूप ही भूल चुका था। लेकिन आपने मुझे याद दिलाकर मुझमें नई उमंग पैदा कर दी है। साथ ही मुझे शक्ति का अनुभव हो रहा है। अब मैं परमात्मा से बिना मिले नहीं रह सकता हूं पर आपके सहयोग की जरूरत पड़ेगी।

योग—चिन्ता न करिये हम आपको हर तरह से सहयोग देते रहेंगे। जिसे आप बहुत बड़ी बात समझ बैठे थे वह बहुत ही सहज है। हम आपको परमात्मा से अवश्य ही मिलवा देंगे। इतना ही है आप ज्ञान की बातें ध्यान देकर सुनो फिर वैसा ही धारण कर बढ़ते चलो।

श्याम—अवश्य, मैं ज्ञान की हर बात, हर शर्त स्वीकार करता हूं। इसमें ही मेरा कल्याण है।

ज्ञान—अब शोक छोड़कर योग के द्वारा बल पाकर दूसरी आत्माओं को भी शुभ संकल्प पहुंचाना व संदेश देना जिससे और भी कल्याण होगा।

श्याम—लेकिन आप अभी कह रहे थे कि उस सर्वशक्तिवान शिव से ही सारी शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है फिर भला कौन-सी शक्ति शेष रह जाती है जो योग से प्राप्त करूं?

ज्ञान—अरे भाई! शक्तियां सारी परमात्मा से ही मिलती हैं पर ये सभी योग के द्वारा ही तो मिलती हैं। जैसे आपको कोई सामान दुकान से चाहिये तो आप स्वयं दुकान से उठाकर तो नहीं ले सकते हैं। हां, दुकानदार के द्वारा कोइ भी सामान आसानी-से प्राप्त कर सकते हैं। उसी प्रकार शक्तियां देते तो परमात्मा हैं पर योग के द्वारा ही तो आप लें सकते हैं ना।

योग—शक्तियों से भरपूर रह अन्य आत्माओं को भी बल दे सकते हैं क्योंकि आप में दोहरा बल रहेगा एक तो आत्मिक बल, दूसरा परमात्म बल। फिर तो आप असमर्थ को भी सहज समर्थ व शक्तिशाली बना सकते हैं।

ज्ञान—इतना ही नहीं बल्कि योगबल के द्वारा सांसारिक समस्याएं अपने आप ही हल हो जाती हैं। ये योगबल आत्मिक जाग्रति लाकर दूर-दूर तक आत्माओं को शान्ति पहुंचाता है। योगबल द्वारा दूसरों के संस्कार परिवर्तन व दूसरों को सत्यता का अनुभव भी करा सकते हो।

श्याम—वाह! कमाल है योग में इतनी शक्ति! फिर क्यों दुनिया वाले निर्बल बने हुए हैं इसका कारण मुझे समझ नहीं आया?

ज्ञान—कारण तो बहुत बड़ा है भाई। सब थोड़े ही बलवान बनते हैं। भाग्यवान ही बलवान बन पाते हैं और वे ही परमात्मा से गुण ग्रहण करते हैं।

श्याम—सचमुच मैं कितना भाग्यवान हूं जो आप जैसे सच्चे मित्रों को सहज में ही पा गया नहीं तो आप जैसे मित्रों को सहज रीति पा लेना असंभव है क्योंकि सच्चे मित्र हीरे की तरह कीमती और दुर्लभ हैं। झूठे मित्र तो पतझड़ की पत्तियों की तरह सर्वत्र मिलते ही रहते हैं। पर धन्य मेरा भाग्य! मैं किस तरह आपका शुक्रिया अदा करूं कुछ समझ नहीं आता?

ज्ञान—यह कमाल तो उस परमात्मा की ही है जिन्होंने सतयुगी दुनिया के लायक आपको बना दिया। अब सदा स्वस्थिति में स्थित रहना, तभी माया से बच सकते हो। माया के तूफान और विघ्नों से घबराना नहीं, उन्हें इम्तिहान समझ पास करना। चाहे कितनी भी बड़ी समस्या आ जाए योगबल के द्वारा हर परिस्थिति को पार करते जाना।

योग—एक बात और ध्यान रखना, **जिस प्रकार शरीर को भोजन देते हो उसी प्रकार आत्मा को भी ईश्वरीय स्मृति और शक्ति का भोजन देते रहना।** अपने को महाबली और सदा विजयी समझो। माया से कभी हार नहीं खाओ बल्कि मेरे द्वारा इतनी शक्ति भर लो जो माया दूर से ही नमस्कार करे।

श्याम—वाह! वाह!! अथाह शक्ति का विकास, ज्ञान और योग का संगम। ऐसा लग रहा है जैसे मैं उड़ रहा हूं। आप मुझे उड़ाने में पंख का काम कर रहे हैं। कितना मेरा सौभाग्य!

योग—अच्छा, चलें भाई, कल सुबह अमृतवेले आपसे फिर मुलाकात होगी। हम आपसे जरूर मिलेंगे। आप तैयार ही रहना। इसी ब्रह्ममुहूर्त में परमात्मा से मिलन मनाकर आपकी निर्बलता सदा के लिए खत्म कर देंगे।

श्याम—निर्बलता तो आज ही खत्म हो गई। ये भी क्या कमाल है!

ज्ञान—चलो आपने ये तो अनुभव किया, ये अनुभव आपको आगे बढ़ायेगा। अच्छा चलें, ओम शान्ति...

(ज्ञान-योग का प्रस्थान) (समाप्त)

परिस्थितियों के जिम्मेदार हम स्वयं है पृष्ठ ६ का शेष

अमृतवेला—3.30 से 8.0 बजे तक। 8.00 से शाम के 6.00 बजे तक व 6.00 से रात्रि 10.00 बजे तक, तीनों में अलग-अलग अभ्यास करो।

प्रातःकाल स्वमान का अभ्यास, रूहानी ड्रिल का अभ्यास व बिन्दु रूप का अभ्यास...

दिन में...बाबा को किसी न किसी सम्बन्ध से साथ रखना। शाम को मनन व स्वयं को सर्व शक्तिवान की छत्रछाया के नीचे समझना। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप से अभ्यास करने से लक्ष्य-सिद्धि अवश्य ही होगी।

भारती—अवश्य बहन जी, अब मैं खूब मेहनत करके 8 घण्टे तक योग का चार्ट पहुंचाऊंगी। सचमुच योग बिना सेवा भी नीरस है। इस सहयोग के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद...

किरण—धन्यवाद तो यही है कि आप बाबा की श्रेष्ठ आशाओं का चिराग बनें।

विकास नगर (देहरादून) में उपसेवाकेंद्र के उद्घाटन के पश्चात् इसके निमित बना परिवार ब्र.कु. प्रेम तथा सरिता बहन के साथ दिखाई दे रहा है।

दिल्ली—भ्राता डी. मौजा, अधीक्षक, जिला कारागार, दिल्ली (हरीनगर) सेवाकेंद्र पर आध्यात्मिक चित्रों का अवलोकन करने पश्चात् बी.के. शुक्ला बहन तथा अन्य के साथ दिखाई दे रहे हैं।

गुरुदासपुर—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के उद्घाटन समारोह में उपस्थित बहन शीला महाजन विधायक, ब्रह्माकुमारी सुमन तथा अन्य दिखाई दे रहे हैं।

आलंदी (पूना)—हिन्दू एकता मेले में आयोजित 'राजयोग प्रदर्शनी' का उद्घाटन भ्राता सुरेश गांधी जी, नगराध्यक्ष टैप काटते हुए कर रहे हैं।

देहरादून की जिला मैजिस्ट्रेट बहन विभा पुरी जी आध्यात्मिक संग्रहालय का अवलोकन कर रही हैं। साथ में हैं बी.के. अनिता तथा अन्य बहनें।

जयपुर—महिला दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में ब्रह्माकुमारी पूनम बहन ने प्रतिनिधित्व किया। मंच पर उनके साथ अन्य अतिथिगण दिखाई दे रहे हैं।

इंदौर—लघु उद्योग सेवा संस्थान द्वारा आयोजित 'महिला उद्यम विकास शिविर' के उद्घाटन समारोह में ब्रह्माकुमारी हेमलता बहन प्रवचन कर रही हैं।

भावनगर में एक प्रवचन कार्यक्रम में भ्राता पटेल साहेब, चीफ जुडीशियल मैजिस्ट्रेट अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं।

शिवसागर सेवाकेंद्र द्वारा नव वर्ष शुभारंभ के उपलक्ष्य में सजाई गई नवयुग की प्रतीक श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण की झांकी के समक्ष ब्र.कु. भाई-बहनें नवयुग रचयिता परमात्मा शिव की याद में खड़े हैं।

जलगांव—जेल में आयोजित एक प्रवचन कार्यक्रम में कैदियों का विशाल समूह बड़े ध्यान से ईश्वरीय संदेश सुन रहा है।

अलवर में ज़िला बार एसोसिएशन की सभा में उपस्थित सदस्यगण के सम्मुख बी.के. ममता बहन प्रवचन कर रही हैं।

जगदीश चन्द्र हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र० कु० आत्म प्रकाश, सम्पादक, बी ६/१६ कृष्णानगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओमशांति प्रैस, कृष्णानगर, दिल्ली-५१ से छपवाया, Regd No 10563/65-D, (E)—70